॥ॐ॥

॥श्री परमात्मने नमः ॥

॥श्री गणेशाय नमः॥

॥ अथर्ववेद संहिता ॥

॥ अथर्ववेद ॥

॥ अथ नवम काण्डम् ॥

श्री हिंदू धर्म वैदिक एजुकेशन फाउंडेशन

॥ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

विषय सूची

सूक्त १- मधुविद्या सूक्त 4

सूक्त २ – काम सूक्त 15

सूक्त ३- शाला सूक्त 28

सूक्त ४- ऋषभ सूक्त 41

सूक्त ५ – पञ्चौदन-अज सूक्त 52

सूक्त ९ – अतिथि सत्कार सूक्त 70

सूक्त ७ – गौ सूक्त 92

सूक्त ८- यक्ष्मनिवारण सूक्त 99

सूक्त ९-आत्मा सूक्त 108

सूक्त १० – आत्मा सूक्त 120

॥अथर्ववेद – नवम काण्डम्॥

सूक्त १- मधुविद्या सूक्त

मधुकशा गौ की स्तुति तथा व वर्णन, सोमरस अग्नि तथा अश्विनीकुमारों की स्तुति

दिवस्पृथिव्या अन्तरिक्षात्समुद्रादग्नेर्वातान् मधुकशा हि जज्ञे।
तां चायित्वामृतं वसानां हृद्भिः प्रजाः प्रति नन्दन्ति सर्वाः ॥९,१.१॥

मधुकशा (मधुरप्रवाह पैदा करने वाली मधुविद्या या गौ), स्वर्ग, पृथ्वी, अन्तरिक्ष, समुद्र और अग्नि से उत्पन्न हुई है ।उस अमृतरूपी रस देने वाली मधुकशा की अर्चना करने से सम्पूर्ण प्रजाएँ हृदय में आनन्दित होती हैं ॥९,१.१॥

महत्पयो विश्वरूपमस्याः समुद्रस्य त्वोत रेत आहुः ।
यत ऐति मधुकशा रराणा तत्प्राणस्तदमृतं निविष्टम् ॥९,१.२॥

मधुकशा का पय (दूध या रस) विश्वरूप (अनेक रूपों वाला) है। वहीं समुद्र का रेतस् भी है। यह मधुविद्या शब्द करती हुई जहाँ से जाती हैं, वहीं प्राण है (प्राणों से उसकी उत्पत्ति होती हैं)। वह सर्वत्र संचरित अमृत- प्रवाह की तरह है ॥९,१.२॥

पश्यन्त्यस्याश्चरितं पृथिव्यां पृथङ्नरो बहुधा मीमांसमानाः ।
अग्नेर्वातान् मधुकशा हि जज्ञे मरुतामुग्रा नप्तिः ॥९,१.३॥

विभिन्न प्रकार से अलग-अलग विचार करने वाले मीमांसक, इस मधुकशा के चरित्र को पृथ्वी पर अनेक प्रकार से देखते हैं। मरुद्गणों की प्रचण्ड तेजस्विनी पुत्रीं, इस मधुकशा को अग्नि और वायुदेव के संयोग से उत्पन्न हुईं बताया गया है ॥९,१.३॥

मातादित्यानां दुहिता वसूनां प्राणः प्रजानाममृतस्य नाभिः ।
हिरण्यवर्णा मधुकशा घृताची महान् भर्गश्चरति मर्त्येषु ॥९,१.४॥

यह मधुकशा आदित्यों की जननी, वसुगणों की कन्या, प्रजाजनों की प्राण और अमृत की नाभिक कही गयी है। हिरण्य (सृष्टिउत्पादक मूल तत्त्व) के वर्ण (स्वभाव या प्रकृति) वाली घृत (सार तत्त्व) की सिंचनकत्रों, यह मधुकशा सभी मनुष्यों में महान तेजस्विता के साथ विचरण करती है ॥९,१.४॥

मधोः कशामजनयन्त देवास्तस्या गर्भो अभवद्विश्वरूपः ।
तं जातं तरुणं पिपर्ति माता स जातो विश्वा भुवना वि चष्टे ॥९,१.५॥

इस मधुकशा को देवशक्तियों ने निर्मित किया है, उसका गर्भ विश्वरूप होता है (यह विश्व में कोई भी रूप गढ़ सकती हैं)। उत्पन्न हुए उस तरुण (नयह मधुरतायुक्त पदार्थ) को वही माता पालती हैं। उस (मधुर- प्रवाह) ने पैदा हुए भुवनो(लोको) को आलोकित (प्रभावित) किया है ॥९,१.५॥

कस्तं प्र वेद क उ तं चिकेत यो अस्या हृदः कलशः सोमधानो अक्षितः ।
ब्रह्मा सुमेधाः सो अस्मिन् मदेत ॥९,१.६॥

इस (मधुकशा) के हृदय के समीप सोमरस से भरपूर कलश अक्षयरूप से विद्यमान है । इस कलश को कौन जानते हैं और कौन वास्तविक रूप में इसका विचार करते हैं? उसी (मधुर रस) से ब्रह्मा (सृजनकर्ता) देव (अपना कार्य सम्पन्न करते हुए) आनन्दित हो ॥९,१.६॥

स तौ प्र वेद स उ तौ चिकेत यावस्याः स्तनौ सहस्रधारावक्षितौ ।
ऊर्जं दुहाते अनपस्फुरन्तौ ॥९,१.७॥

जो इस (मधुकशा) के हजारों धाराओं से युक्त अक्षय स्तन हैं, वह बिना रुके निरन्तर बलप्रद रस को देते रहते हैं । वह (ब्रह्मा) उसके ज्ञाता और (प्रयोगों के चिन्तनकर्ता हैं ॥९,१.७॥

हिङ्करिक्रती बृहती वयोधा उच्चैर्घोषाभ्येति या व्रतम् ।
त्रीन् घर्मान् अभि वावशाना मिमाति मायुं पयते पयोभिः ॥९,१.८॥

हिंकार करती हुई, हवि की धारणकर्त्री, उच्च स्वर का उद्‌घोष करने वाली, जो शक्ति यज्ञभूमि में विचरती है, वह इन तीनों तेजों को नियंत्रित करती हुई काल का मापन करती है और उनके लिए दूध की धाराओं को स्रवित करती है ॥९,१.८॥

यामापीनामुपसीदन्त्यापः शाक्करा वृषभा यह स्वराजः ।
ते वर्षन्ति ते वर्षयन्ति तद्विदे काममूर्जमापः ॥९,१.९॥

जो वर्षणशील, स्वप्रकाशित अप् (उत्पादक-प्रवाह), उस पान करने योग्य शक्तिमती (मधुकशा) के पास पहुँचते हैं, वह इस विद्या की जानकारी के लिए अभीष्ट बलदायी अन्न की वर्षा करते हैं, वह ही (सार्थक) बरसते हैं ॥९,१.९॥

स्तनयित्नुस्ते वाक्प्रजापते वृषा शुष्मं क्षिपसि भूम्यामधि ।
अग्नेर्वातान् मधुकशा हि जज्ञे मरुतामुग्रा नप्तिः ॥९,१.१०॥
{१}

है प्रजापते ! मेघ गर्जना आपकी वाणी है । हे जलवर्षक ! आप ही भूमि पर अपने बल को फेंकते हैं। अग्नि और वायु से मरुद्गणों की प्रचण्ड पुत्री मधुकशा पैदा हुई है ॥९,१.१०॥

यथा सोमः प्रातःसवने अश्विनोर्भवति प्रियः ।
एवा मे अश्विना वर्च आत्मनि ध्रियताम् ॥९,१.११॥

प्रात: सवन (यज्ञ) में सोमरस, जिस प्रकार अश्विनीदेवों को प्रिय होता है। उसी प्रकार हे देवो ! आप हमारे अन्दर तेजस्विता स्थापित करें ॥९,१.११॥

यथा सोमो द्वितीयह सवन इन्द्राग्न्योर्भवति प्रियः ।
एवा म इन्द्राग्नी वर्च आत्मनि ध्रियताम् ॥९,१.१२॥

द्वितीय सवन (यज्ञ) में सोमरस, जिस प्रकार इन्द्राग्नि देवों को प्रिय होता है, उसी प्रकार हे देवो ! आप हमारे अन्दर तेजस्विता की स्थापना करें ॥९,१.१२॥

यथा सोमस्तृतीयह सवन ऋभूणां भवति प्रियः ।
एवा म ऋभवो वर्च आत्मनि ध्रियताम् ॥९,१.१३॥

तृतीय सवन में जिस प्रकार सोमरस ऋभु देवों को प्रिय होता है, उसी प्रकार हे देवो ! आप हमारे अन्दर वर्चस् की स्थापना करें ॥९,१.१३॥

मधु जनिषीय मधु वंसिषीय ।
पयस्वान् अग्न आगमं तं मा सं सृज वर्चसा ॥९,१.१४॥

हम मधुरता को उत्पन्न करें और मधुरता को सम्पादन करें । हे अग्निदेव ! हम पयोरसों को समर्पित करने के निमित्त आ गए हैं । अतएव आप हमें तेजस्विता सम्पन्न बनाएँ ॥९,१.१४॥

सं माग्ने वर्चसा सृज सं प्रजया समायुषा ।
विद्युर्मे अस्य देवा इन्द्रो विद्यात्सह ऋषिभिः ॥९,१.१५॥

हे अग्निदेव ! आप हमें तेजस्, प्रजा और आयु से सम्पन्न करें। देवगण और ऋषि यह सभी हमें इस रूप में जानें कि हम अग्नि के सेवक हैं ॥९,१.१५॥

यथा मधु मधुकृतः संभरन्ति मधावधि ।
एवा मे अश्विना वर्च आत्मनि ध्रियताम् ॥९,१.१६॥

जिस प्रकार मधु संचयनकर्ता (या मधुमक्खियाँ) मधुकणों का अधिग्रहण करके मधु को एकत्र करती हैं, उसी प्रकार अश्विनीकुमार मुझ में तेजस्विता स्थापित करें ॥९,१.१६॥

यथा मक्षाः इदं मधु न्यञ्जन्ति मधावधि ।
एवा मे अश्विना वर्चस्तेजो बलमोजश्च ध्रियताम् ॥९,१.१७॥

जिस प्रकार मधुमक्खियाँ नयह शहद को पूर्व संचित शहद में संगृहीत करती हैं, उसी प्रकार वह दोनों अश्विनीकुमार हमारे अन्दर वर्चस्, तेजस्, बल और ओजस् को स्थापित करें ॥९,१.१७॥

यद्गिरिषु पर्वतेषु गोष्वश्वेषु यन् मधु ।
सुरायां सिच्यमानायां यत्तत्र मधु तन् मयि ॥९,१.१८॥

गिरि-पर्वतों और गौ, अश्वादि पशुओं में जो मधुरता है तथा जो सिंचित होने वाले तीक्ष्ण औषधि रस में मधुरता है, वहीं मधुरता हमारे अन्दर भी स्थापित हो ॥९,१.१८॥

अश्विना सारघेण मा मधुनाङ्क्तं शुभस्पती ।
यथा वर्चस्वतीं वाचमावदानि जनामनु ॥९,१.१९॥

हे शुभ के पालक अश्विनीदेवो ! आप हमें सार- संग्रह करने वालों के संगृहीत मधु से सम्पन्न करें, जिससे हम तेजस्विनी मधुर वाणी जन साधारण के बीच कह पाएँ ॥९,१.१९॥

स्तनयित्नुस्ते वाक्प्रजापते वृषा शुष्मं क्षिपसि भूम्यां दिवि ।
तां पशव उप जीवन्ति सर्वे तेनो सेषमूर्जं पिपर्ति ॥९,१.२०॥

हे प्रजापालक देव ! आप अभीष्टवर्धक हैं और मेघ गर्जना ही आपकी वाणी है। आप ही द्युलोक से भूमि तक बल की वृष्टि करते हैं। सभी जीव-जन्तु उसी पर जीवनयापन करते हैं। उसी के द्वारा वह (पृथ्वी या मधुकशा)अन्न और बलवर्द्धक रस को पशत्रु ष्ट करते हैं ॥९,१.२०॥

पृथिवी दण्डोऽन्तरिक्षं गर्भो द्यौः कशा विद्युत्प्रकशो हिरण्ययो बिन्दुः ॥९,१.२१॥

(उन प्रजापति के लिए भूमि दण्डरूपा, अन्तरिक्ष मध्यभाग, द्युलोक कशारूप, विद्युत् प्रकाशस्वरूप और हिरण्य (तेज) बिन्दु (लक्ष्य रूप है ॥९,१.२१॥

यो वै कशायाः सप्त मधूनि वेद मधुमान् भवति ।
ब्राह्मणश्च राजा च धेनुश्चानड्वांश्च व्रीहिश्च यवश्च मधु सप्तमम् ॥९,१.२२॥

ब्राह्मण, राजा, धेनु, वृषभ, चावल, जौ और मधु, यह सात मधुरतायुक्त हैं । जो मधुकशा गौ के इन सात प्रकार के मधुर रसों के ज्ञाता हैं, वह माधुर्ययुक्त होते हैं ॥९,१.२२॥

मधुमान् भवति मधुमदस्याहार्यं भवति ।
मधुमतो लोकान् जयति य एवं वेद ॥९,१.२३॥

जो इस रहस्य के ज्ञाता हैं, वह माधुर्य – सम्पन्न हो जाते हैं । वह मधुमय भोजन करते हुए, मधुरतायुक्त लोकों पर विजय- श्री प्राप्त करते हैं ॥९,१.२३॥

यद्वीध्रे स्तनयति प्रजापतिरेव तत्प्रजाभ्यः प्रादुर्भवति ।
तस्मात्प्राचीनोपवीतस्तिष्ठे प्रजापतेऽनु मा बुध्यस्वेति ।
अन्वेनं प्रजा अनु प्रजापतिर्बुध्यते य एवं वेद ॥९,१.२४॥ {२}

अन्तरिक्ष में जो गर्जना होती है, मानो प्रजापति ही प्रजाओं के निमित्त प्रकट होते हैं, इसलिए पूर्व में (पहले) ही उपवीत (यज्ञोपवीत अथवा यज्ञीय श्रेष्ठ सूत्रों) से युक्त होकर तैयार रहें । जो ऐसा करते हैं, उन्हें प्रजापालक देव नेहपूर्वक स्मरण रखते हैं तथा प्रजाएँ उनके अनुकूल रहती हैं ॥९,१.२४॥

॥अथर्ववेद – नवम काण्डम्॥

सूक्त २ – काम सूक्त

वृषभ रूपी काम की स्तुति, काम देव से दरिद्रता दूर करने की प्रार्थना, काम देव की स्तुति, अग्नि, इंद्र सोम और काम देव की स्तुति

सपत्नहनमृषभं घृतेन कामं शिक्षामि हविषाज्येन ।
नीचैः सपत्नान् मम पदय त्वमभिष्टुतो महता वीर्येण ॥९,२.१॥

शत्रुनाश की बलशाली कामनाओं को हम घृतादि की हवियों से शिक्षित (संस्कारित एवं प्रेरित) करते हैं। हे ऋषभ ! आप हमारी प्रार्थनाओं से हर्षित होकर बड़े पराक्रम से हमारे अनिष्टकारी शत्रुओं को पतित करें ॥९,२.१॥

यन् मे मनसो न प्रियं चक्षुषो यन् मे बभस्ति नाभिनन्दति ।
तद्दुष्वप्न्यं प्रति मुञ्चामि सपत्ने कामं स्तुत्वोदहं भिदेयम् ॥९,२.२॥

जो दु:स्वन हमारे मन:क्षेत्र और नेत्र (दर्शनेन्द्रियों के लिए श्रेयस्कर नहीं तथा न ही हमें प्रफुल्लित करने वाले हैं, अपितु जो हमें तिरस्कृत करने वाले हैं, उन्हें हम अनिष्टकारी शत्रुओं की ओर भेजते हैं। इच्छाशक्ति द्वारा हम उनका भेदन करते हैं ॥९,२.२॥

दुष्वप्न्यं काम दुरितं च कमाप्रजस्तामस्वगतामवर्तिम् ।
उग्र ईशानः प्रति मुञ्च तस्मिन् यो अस्मभ्यमंहूरणा चिकित्सात्॥९,२.३॥

हे सबके स्वामी, पराक्रमी कामदेव ! आप अनिष्टकर स्वप्न, पापकर्म, नि:सन्तानरूप दुर्भाग्य, दारिद्रय, आपदा आदि सभी अनिष्टों को उसकी ओर भेजें, जो शत्रु अपनी कुटिलताओं द्वारा पापमूलक विपत्ति में धकेलने की, हमारे प्रति दुर्भावनाएँ रखते हैं ॥९,२.३॥

नुदस्व काम प्र णुदस्व कामावर्तिं यन्तु मम यह सपत्नाः ।
तेषां नुत्तानामधमा तमांस्यग्ने वास्तूनि निर्दह त्वम् ॥९,२.४॥

हे काम ! आप हमारी अभावजन्य दरिद्रता को हटाकर हमारे शत्रुओं के प्रति उस अभावग्रस्तता को भिजवाएँ । भली प्रकार इसे प्रेषित करें । हे अग्निदेव ! आप इन दुष्ट शत्रुओं को अन्धकार में भेजते हुए इनकेघर की वस्तुओं को भस्मसात् करें ॥९,२.४॥

सा ते काम दुहिता धेनुरुच्यते यामाहुर्वाचं कवयो विराजम् ।
तया सपत्नान् परि वृङ्ग्धि यह मम पर्येनान् प्राणः पशवो जीवनं वृणक्तु ॥९,२.५॥

हे काम ! वह धेनुरूपा वाणी आपकी पुत्री कही जाती है, जिसे कविजन विशेष तेजस्वी (वचन) कहते हैं। इस वाणी द्वारा आप हमारे शत्रुओं को विनष्ट करें । प्राण, पशु और आयु इन शत्रुओं का परित्याग करें ॥९,२.५॥

कामस्येन्द्रस्य वरुणस्य राज्ञो विष्णोर्बलेन सवितुः सवेन ।
अग्नेर्होत्रेण प्र णुदे सपत्नां छम्बीव नावमुदकेषु धीरः ॥९,२.६॥

जिस प्रकार धैर्यवान् धीवर जल में नाव को चलाते हैं, हम उसी प्रकार काम, इन्द्र, वरुण राजा के साथ विष्णुदेव के बल, सवितादेव की प्रेरणा तथा अग्निहोत्र से शत्रुओं को दूर करते हैं ॥९,२.६॥

अध्यक्षो वाजी मम काम उग्रः कृणोतु मह्यमसपत्नमेव ।
विश्वे देवा मम नाथं भवन्तु सर्वे देवा हवमा यन्तु म इमम् ॥९,२.७॥

प्रचण्ड पराक्रमी 'काम' (संकल्प) हमारे अधिष्ठाता देव हैं। सत्कर्म प्रधान याज्ञिक कर्म हमें शत्रुओं से विहीन करें। समस्त देवगण हमारे स्वामी के रूप में यज्ञ मण्डप में पधारें ॥९,२.७॥

इदमाज्यं घृतवज्जुषाणाः कामज्येष्ठा इह मादयध्वम् ।
कृण्वन्तो मह्यमसपत्नमेव ॥९,२.८॥

हे काम को ज्येष्ठ मानने वाले देवों ! आप घृतयुक्त आज्याहुति का सेवन करते हुए आनन्दित हों और हमें शत्रुओं से रहित करें ॥९,२.८॥

इन्द्राग्नी काम सरथं हि भूत्वा नीचैः सपत्नान् मम पादयाथः ।
तेषां पन्नानामधमा तमांस्यग्ने वास्तून्यनुनिर्दह त्वम् ॥९,२.९॥

हे इन्द्राग्नि और कामदेव ! आप सभी एक साथ रथ पर सवार होकर हमारे वैरियों को नीचे गिराएँ । हे। अग्निदेव ! इनके गिरने पर इन्हें गहन अन्धकार से आवृत करके आप इनके घर की वस्तुओं को भस्म कर डालें ॥९,२.९॥

जहि त्वं काम मम यह सपत्ना अन्धा तमांस्यव पादयैनान् ।
निरिन्द्रिया अरसाः सन्तु सर्वे मा ते जीविषुः कतमच्चनाहः ॥९,२.१०॥

हे काम ! आप हमारे शत्रुओं का संहार करके गहन अन्धकाररूप मृत्यु को सौंप दें । वह सभी इन्द्रिय सामर्थ्य से रहित और निर्वीर्य होकर एक दिन भी जीवित रहने की स्थिति में न रहें ॥९,२.१०॥

अवधीत्कामो मम यह सपत्ना उरुं लोकमकरन् मह्यमेधतुम्
।
मह्यं नमन्तां प्रदिशश्चतस्रो मह्यं षड़ुर्वीर्घृतमा वहन्तु
॥९,२.११॥

काम शक्ति ने हमारे अनिष्टकारक शत्रुओं (अथवा आन्तरिक दुर्बलताओं) को विनष्ट कर दिया है, हमारे विकास के लिए विस्तृत लोक (स्थान) प्रदान किए हैं। चारों दिशाएँ हमारे लिए नम्र (अनुकूल) हों तथा छह भूभाग हमारे लिए घृत (सार वस्तुएँ प्रदान करें ॥९,२.११॥

तेऽधराञ्चः प्र प्लवन्तां छिन्ना नौरिव बन्धनात्।
न सायकप्रणुत्तानां पुनरस्ति निवर्तनम् ॥९,२.१२॥

बन्धन से रहित नौका जिस प्रकार (प्रवाह में) नीचे की ओर स्वत: बहती है, उसी प्रकार हमारे अनिष्टकारक शत्रु अधोगति में गिरें । बाणों से भगायह गए शत्रुओं का पुन: लौटना सम्भव न हो ॥९,२.१२॥

अग्निर्यव इन्द्रो यवः सोमो यवः ।

यवयावानो देवा यवयन्त्वेनम् ॥९,२.१३॥

अग्नि, इन्द्र और सोम – यह सभी देवगण, शत्रुओं को भगाते हुए हमारा संरक्षण करें । यह सभी देव, शत्रुओं को दूर करें ॥९,२.१३॥

असर्ववीरश्चरतु प्रणुत्तो द्वेष्यो मित्रानां परिवर्ग्यः स्वानाम् ।
उत पृथिव्यामव स्यन्ति विद्युत उग्रो वो देवः प्र मृणत्सपत्नान् ॥९,२.१४॥

हमारे द्वारा भगाए गए शत्रु सभी शूरवीर सैनिकों से विहीन होकर और अपने हितैषी मित्रों से परित्यक्त होकर विचरें ।विद्युत् तरंगें पृथ्वी पर इनके खण्ड-खण्ड कर दें और हे काम आपके पराक्रमी देव शत्रुओं का मर्दन करें॥९,२.१४॥

च्युता चेयं बृहत्यच्युता च विद्युद्बिभर्ति स्तनयित्नूंश्च सर्वान् ।
उद्यन्न् आदित्यो द्रविणेन तेजसा नीचैः सपत्नान् नुदतां मे सहस्वान् ॥९,२.१५॥

सभी मेघ गर्जनों की धारणकत्र क्द्युित् गिरकर अथवा न गिरते हुए स्थायीरूप से और उदय को प्राप्त होने वाले शक्तिमान् सूर्य अपनी तेजस्वितारूप ऐश्वर्य से हमारे अनिष्टकर शत्रुओं को पतित करें ॥९,२.१५॥

यत्ते काम शर्म त्रिवरूथमुद्भु ब्रह्म वर्म विततमनतिव्याध्यं कृतम् ।
तेन सपत्नान् परि वृङ्ग्धि यह मम पर्येनान् प्राणः पशवो जीवनं वृणक्तु ॥९,२.१६॥

हे कामशक्ति ! आपके जो सुखदायक तीनों ओर से संरक्षक, श्रेष्ठ-सामर्थ्ययुक्त और शस्त्रों से भेदनरहित विस्तृत (फैले हुए) ज्ञानमय कवच बने हुए हैं, उनसे आप हमारे अकल्याणकारी (अनिष्टकर) शत्रुओं को दूर करें । प्राण, पशु और आयु यह तीनों हमारे शत्रुओं का परित्याग करें ॥९,२.१६॥

यहन देवा असुरान् प्राणुदन्त यहनेन्द्रो दस्यून् अधमं तमो निनाय ।

तेन त्वं काम मम यह सपत्नास्तान् अस्माल्लोकात्प्र णुदस्व दूरम् ॥९,२.१७॥

जिससे इन्द्रदेव ने दस्युओं को गहन अन्धकार (अथवा मृत्युरूप अधम अन्धकार) में फेंक दिया था और जिससे देवगण आसुरी तत्त्वों को खदेड़ते रहे, हे सत्संकल्परूप काम ! उसी सामर्थ्य से आप हमारे अवरोधकतत्त्वों को इस लोक से दूर करें ॥९,२.१७॥

यथा देवा असुरान् प्राणुदन्त यथेन्द्रो दस्यून् अधमं तमो बबाधे ।
तथा त्वं काम मम यह सपत्नास्तान् अस्माल्लोकात्प्र णुदस्व दूरम् ॥९,२.१८॥

जिस प्रकार इन्द्रदेव ने अवरोधक तत्वों को हीन अन्धकार में धकेला और जिस विधि से देवशक्तियों ने असुरता का पराभव किया, उसी प्रकार हे काम ! आप हमारी प्रगति में बाधक अवांछनीय तत्त्वों को हटा दें ॥९,२.१८॥

कामो जज्ञे प्रथमो नैनं देवा आपुः पितरो न मर्त्याः ।

ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहा महांस्तस्मै ते काम नम इत्कृनोमि ॥९,२.१९॥

सृष्टि- उत्पत्ति काल में पहले काम (संकल्प) का उद्भव हुआ। देवगणों, पितरों और मनुष्यों ने इसे नहीं पाया (वह इससे पीछे ही रह गए), अतः हे काम ! आप श्रेष्ठ और महान् हैं, ऐसे आपके निमित्त हम नमन करते हैं ॥९,२.१९॥

यावती द्यावापृथिवी वरिम्णा यावदापः सिष्यदुर्यावदग्निः ।
ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहा महांस्तस्मै ते काम नम इत्कृणोमि ॥९,२.२०॥

जितने विस्तृत द्युलोक और पृथ्वी हैं, जहाँ तक जल का विस्तार और जितने क्षेत्र में अग्नि का विस्तार है, हे सत्संकल्प के प्रेरक काम ! आप सभी प्राणियों में संव्याप्त होने वाले विस्तार में उनसे भी श्रेष्ठ और महान् हैं, अतएव हम आपके प्रति प्रणाम करते हैं ॥९,२.२०॥

यावतीर्दिशः प्रदिशो विषूचीर्यावतीराशा अभिचक्षणा दिवः ।

ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहा महांस्तस्मै ते काम नम इत्कृणोमि ॥९,२.२१॥

जहाँ तक दिशाएँ और उप दिशाएँ संव्याप्त हैं तथा जहाँ तक स्वर्गीय प्रकाश की विस्तारकर्ता (फैलाने वाली) दिशाएँ हैं, हे काम ! आप उनसे भी श्रेष्ठ और महान् हैं, ऐसे आपके प्रति हम नमन करते हैं ॥९,२.२१॥

यावतीर्भृङ्गा जत्वः कुरूरवो यावतीर्वघा वृक्षसर्प्यो बभूवुः । ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहा महांस्तस्मै ते काम नम इत्कृणोमि ॥९,२.२२॥

जहाँ तक भृङ्ग, मक्खियाँ (कीट), नीलगायें (पृथ्वीच), काटने वाले डेमू और पेड़ पर चढ़ने वाले पशु तथा अँगने वाले जीव होते हैं, हे काम ! आप उनसे भी कहीं महान् और श्रेष्ठ हैं, अतएव आपके प्रति हमारा नमन है ॥९,२.२२॥

ज्यायान् निमिषतोऽसि तिष्ठतो ज्यायान्त्समुद्रादसि काम मन्यो ।

ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहा महांस्तस्मै ते काम नम इत्कृनोमि ॥९,२.२३॥

हे संकल्प शक्तिरूप काम और मन्यु ! आप आँख झपकने वालों, स्थित पदार्थों और जल के अथाह भण्डार रूप समुद्र से भी बढ़कर महान् और उत्कृष्ट हैं, आपके प्रति हमारा नमन है ॥९,२.२३॥

न वै वातश्चन काममाप्नोति नाग्निः सूर्यो नोत चन्द्रमाः ।
ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहा महांस्तस्मै ते काम नम इत्कृणोमि ॥९,२.२४॥

वायु, अग्नि, सूर्य और चन्द्रमा इनमें से कोई सत्संकल्परूप काम की तुलना के योग्य नहीं । हे काम ! आप उनसे भी महान् और उत्कृष्ट हैं, ऐसे आपके प्रति हमारा प्रणाम है ॥९,२.२४॥

यास्ते शिवास्तन्वः काम भद्रा याभिः सत्यं भवति यद्वृणिषे ।

ताभिष्ट्वमस्मामभिसंविशस्वान्यत्र पापीरप वेशया धियः ॥९,२.२५॥

हे संकल्प बल के प्रतीक काम ! आपके जो कल्याणकारी और हितकारक शरीर हैं, जिनके द्वारा आप जिनको स्वीकार (वरण) करते हैं, वह सत्यरूप होते हैं। उन उत्कृष्टताओं के साथ आप हम सभी में प्रवेश करें और अपनी दुर्भावग्रस्त विचारणाओं को हमसे भिन्न अवांछनीय तत्त्वों की ओर प्रेरित करें ॥९,२.२५॥

॥अथर्ववेद – नवम काण्डम्॥

सूक्त ३- शाला सूक्त

शालाओं का वर्णन तथा शाला की पूर्व दिशा को नमस्कार

उपमितां प्रतिमितामथो परिमितामुत ।
शालाया विश्ववाराया नद्धानि वि चृतामसि ॥९,३.१॥

सुरचित, प्रत्येक ओर से नापे गए, उपयुक्त अनुपात वाले गृह के चारों ओर बँधे बन्धनों को हम खोलते हैं ॥९,३.१॥

यत्ते नद्धं विश्ववारे पाशो ग्रन्थिश्च यः कृतः ।
बृहस्पतिरिवाहं बलं वाचा वि स्रंसयामि तत्॥९,३.२॥

सम्पूर्ण श्रेष्ठता से युक्त हे शाले ! जो आपमें बन्धन लगा हुआ है और आपके दरवाजे पर जो पाश बँधा है, उसे हम (उपयोग के लिए खोलते हैं, जैसे बृहस्पतिदेव वाणी की शक्ति को खोल देते हैं ॥९,३.२॥

आ ययाम सं बबर्ह ग्रन्थींश्चकार ते दृढान् ।
परूंषि विद्वां छस्तेवेन्द्रेण वि चृतामसि ॥९,३.३॥

जानकार शिल्पी ने आपको ठीक करके ऊँचा बनाया और आपमें गाँठों (जोड़ों) को सुदृढ़ बनाया है । ज्ञानी शिल्पी द्वारा जोड़ों (गाँठों) को काटने के समान हम इन्द्रदेव की सामर्थ्य से उन गाँठौं को खोलते हैं ॥९,३.३॥

वंशानां ते नहनानां प्राणाहस्य तृणस्य च ।
पक्षाणां विश्ववारे ते नद्धानि वि चृतामसि ॥९,३.४॥

समस्त वरणीय ऐश्वर्यों से सम्पन्न हे शाले ! (यज्ञशाला) आपके ऊपर बाँसों, बन्धन स्थानों और ऊपर से बँधे घास-फूस के पक्षों या पाँसों पर लगे बन्धनों को हम खोलते हैं ॥९,३.४॥

संदंशानां पलदानां परिष्वञ्जल्यस्य च ।
इदं मानस्य पत्न्या नद्धानि वि चृतामसि ॥९,३.५॥

इस मान पत्नी (माप का पालन करने वाली) शाला में लगी कैंची के आकार से जुड़ी (संयुक्त) लकड़ियों और चटाइयों के चारों ओर सटे हुए बन्धनों को हम भली प्रकार खोलते हैं ॥९,३.५॥

यानि तेऽन्तः शिक्यान्याबेधू रण्याय कम् ।
प्र ते तानि चृतामसि शिवा मानस्य पत्नि न उद्धिता तन्वे भव ॥९,३.६॥

हे मान की पत्नी ! आपके भीतर जो छींकें, मनोहर सजावट हेतु बाँधे गए हैं, उन मच्चानों को हम भली प्रकार खोलते हैं। आप कल्याणकारिणी शाला हमारे शरीरों के लिए सुखदायिनी हों ॥९,३.६॥

हविर्धानमग्निशालं पत्नीनां सदनं सदः ।
सदो देवानामसि देवि शाले ॥९,३.७॥

हे दिव्यता-सम्पन्न झाले ! (यज्ञशाला) आप हविष्यान्न के स्थान (स्टोर), यज्ञशाला (अग्निहोत्र स्थल), स्त्रियों के रहने के

स्थान, सामान्य स्थान (कमरों) और देवशक्तियों के बैठने के उपासना-स्थल के आसनों से युक्त हों ॥९,३.७॥

अक्षुमोपशं विततं सहस्राक्षं विषूवति ।
अवनद्धमभिहितं ब्रह्मणा वि चृतामसि ॥९,३.८॥

आकाशीय रेखा में (ऊपर की ओर) हजारों अक्षों वाले फैले जाल को हम ब्राह्मीशक्ति द्वारा (अभिमंत्रित करके) खोलते हैं ॥९,३.८॥

यस्त्वा शाले प्रतिगृह्णाति यहन चासि मिता त्वम् ।
उभौ मानस्य पत्नि तौ जीवतां जरदष्टी ॥९,३.९॥

हे मानपत्नी शाले ! जो तुम्हें ग्रहण कर रहे हैं और जिसने तुम्हें बनाया है, वह दोनों ही वृद्धावस्था (पूर्ण आयु) तक जीवित रहें ॥९,३.९॥

अमुत्रैनमा गछतादृढा नद्धा परिष्कृता ।
यस्यास्ते विचृतामस्यङ्गमङ्गं परुष्परुः ॥९,३.१०॥

हम जिस गृह के प्रत्येक अंग और प्रत्येक जोड़ को गाँठों से मुक्त कर रहे हैं, ऐसी है शाले ! जिसके द्वारा आप मजबूत, बन्धनयुक्त और परिष्कृतरूप में बनाई गई हों, आप उसकी स्वर्ग-प्राप्ति में सहायक बनें ॥९,३.१०॥

यस्त्वा शाले निमिमाय संजभार वनस्पतीन् ।
प्रजायै चक्रे त्वा शाले परमेष्ठी प्रजापतिः ॥९,३.११॥

हे शाले ! जिसने आपका निर्माण किया है और जिसने वृक्षों को काटकर (यथाक्रम गढ़कर) स्थापित किया, (उनके माध्यम से) परमेष्ठीं प्रजापति ने प्रज्ञा के कल्याण के निमित्त आपको बनाया है ॥९,३.११॥

नमस्तस्मै नमो दात्रे शालापतयह च कृण्मः ।
नमोऽग्नयह प्रचरते पुरुषाय च ते नमः ॥९,३.१२॥

वृक्षों को शाला के निमित्त काटने वालों, घर के संरक्षकों, अग्नि को अन्दर रखने वालों और आपके भीतर रहने वालों के लिए हमारा नमस्कार हैं ॥९,३.१२॥

गोभ्यो अश्वेभ्यो नमो यच्छालायां विजायते ।
विजावति प्रजावति वि ते पाशांश्चृतामसि ॥९,३.१३॥

शाला में विद्यमान रहने वाले गौ, अश्वादि पशुओं के निमित्त यह अन्न है । हे नाना प्रकार के प्राणियों की उत्पादनकत्र और सन्तान आदि से सम्पन्न शाले ! हम विभिन्न ढंग से आपके पाशों को खोलते हैं ॥९,३.१३॥

अग्निमन्तश्छादयसि पुरुषान् पशुभिः सह ।
विजावति प्रजावति वि ते पाशांश्चृतामसि ॥९,३.१४॥

हे विविध प्राणियों की उत्पादक और प्रजा- सम्पन्न शाले ! आप अपने अन्दर पशुओं के साथ मनुष्यों और अग्नि को विश्राम देती हैं, हम आपकी गाँठों को खोलते हैं ॥९,३.१४॥

अन्तरा द्यां च पृथिवीं च यद्व्यचस्तेन शालां प्रति गृह्णामि त इमाम् ।
यदन्तरिक्षं रजसो विमानं तत्कृण्वेऽहमुदरं शेवधिभ्यः ।
तेन शालां प्रति गृह्णामि तस्मै ॥९,३.१५॥

पृथ्वी और द्युलोक के बीच जो विस्तृत आकाश अथवा यज्ञाग्नि ज्वालाएँ हैं, उनके द्वारा हम आपकी इस शाला को स्वीकार (ग्रहण करते हैं। जो अन्तरिक्ष और पृथ्वी की निर्माणशक्ति हैं, उन्हें हम खजाने के लिए मध्यभाग (उदर) में रखते हैं, इसलिए स्वर्ग प्राप्ति के लिए हम इस शाला को ग्रहण करते हैं ॥९,३.१५॥

ऊर्जस्वती पयस्वती पृथिव्यां निमिता मिता ।
विश्वान्नं बिभ्रती शाले मा हिंसीः प्रतिगृह्णतः ॥९,३.१६॥

बल-प्रदात्री, दुग्धवती पृथ्वी में नयह और निर्मित सभी अन्न को धारण करने में समर्थ हे शाले ! आप प्रतिग्रह (उपहार) लेने वाले को विनष्ट न करें ॥९,३.१६॥

तृणैरावृता पलदान् वसाना रात्रीव शाला जगतो निवेशनी ।
मिता पृथिव्यां तिष्ठसि हस्तिनीव पद्वती ॥९,३.१७॥

घास से आच्छादित, फूस की बनी चटाइयों से ढकी हुई, रात्रि के समान सभी प्राणियों को अपने भीतर आश्रय देने वाली हे शाले ! आप पृथ्वी पर मापकर बनाई गई, उत्तम

पैरों वाली हथिनी के समान (सुदृढ़) स्तम्भों से युक्त होकर खड़ी हैं ॥९,३.१७॥

इटस्य ते वि चृताम्यपिनद्धमपोर्णुवन् ।
वरुणेन समुब्जितां मित्रः प्रातर्व्युब्जतु ॥९,३.१८॥

पिछली बार की तरह आपके ऊपर बाँधे हुए पुलों को अलग करते हुए हम खोलते हैं, वरुणदेव द्वारा खोती गई हे शाले !आपको प्रात:कालीन सूर्यदेव पुनः उद्घाटित करें ॥९,३.१८॥

ब्रह्मणा शालां निमितां कविभिर्निमितां मिताम् ।
इन्द्राग्नी रक्षतां शालाममृतौ सोम्यं सदः ॥९,३.१९॥

मंत्रों द्वारा अभिमंत्रित और क्रान्तदर्शियों द्वारा प्रमाण से रची गई शाला को सोमपान के स्थल पर बैठने वाले अमरदेव, इन्द्राग्नि संरक्षित करें ॥९,३.१९॥

कुलायहऽधि कुलायं कोशे कोशः समुब्जितः ।
तत्र मर्तो वि जायते यस्माद्विश्वं प्रजायते ॥९,३.२०॥

घोंसले में घोंसला (घर में कमरे अथवा देह में गर्भाशय) है, कोशों से कोश (कमरे से कमरा अथवा जीव कोशों से जीवकोशी भली प्रकार सम्बद्ध हैं । वहाँ प्राणधारी जीवों के मरणधर्मा शरीर विभिन्न प्रकार से उत्पन्न होते हैं, जिनसे सम्पूर्ण विश्व प्रजायुक्त होता जाता है ॥९,३.२०॥

या द्विपक्षा चतुष्पक्षा षट्पक्षा या निमीयते ।
अष्टापक्षां दशपक्षां शालां मानस्य पत्नीमग्निर्गर्भ इवा शयह
॥९,३.२१॥

दो पक्षों (पहलुओं या खण्डों) वाली, चार पक्षों, छह पक्षों, आठ पक्षों तथा दस पक्षों वाली शाला (यज्ञशाला) निर्मित की जाती है । उस मानपत्नी (शाला) में हम उसी प्रकार आश्रय लेते हैं, जिस प्रकार गर्भ गृह में अग्नि स्थित रहती है ॥९,३.२१॥

प्रतीचीं त्वा प्रतीचीनः शाले प्रैम्यहिंसतीम् ।
अग्निर्ह्यन्तरापश्च ऋतस्य प्रथमा द्वाः ॥९,३.२२॥

हे शाले ! पश्चिम की ओर मुख करने वाले हम पश्चिमाभिमुख स्थित और हिंसाभाव से रहित शाला में प्रविष्ट होते हैं । अत (सत्य यी यज्ञ) के प्रथम द्वार में हम अग्नि एवं जल के साथ प्रवेश करते हैं ॥९,३.२२॥

इमा आपः प्र भराम्ययक्ष्मा यक्ष्मनाशनीः ।
गृहान् उप प्र सीदाम्यमृतेन सहाग्निना ॥९,३.२३॥

इन रोगरहित यक्ष्मारोग के नाशके जल को हम शाला में भरते हैं और अमृतमय अग्नि के साथ घरों के समीप ही हम बैठते हैं ॥९,३.२३॥

मा नः पाशं प्रति मुचो गुरुर्भारो लघुर्भव ।
वधूमिव त्वा शाले यत्रकामं भरामसि ॥९,३.२४॥

हे शाले ! नव-विवाहित कन्या (वधू) के समान हम तुझे सुसज्जित करते हैं, आप अपने पाशों को हमारी ओर मत फेंकना । आपका भारी बोझ हलका हो जाए ॥९,३.२४॥

प्राच्या दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः ॥९,३.२५॥

शाला की पूर्वदिशा की महिमा के लिए नमन हैं, श्रेष्ठ प्रशंसनीय देवों के निमित्त यह आहुति समर्पित हो ॥९,३.२५॥

दक्षिणाया दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः ॥९,३.२६॥

शाला की दक्षिण दिशा की महिमा के लिए हमारा नमन है, श्रेष्ठ देवों के निमित्त यह आहुति समर्पित हो ॥९,३.२६॥

प्रतीच्या दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः ॥९,३.२७॥

शाला की पश्चिम दिशा की महत्ता के निमित्त हमारा वन्दन है, श्रेष्ठ प्रशंसनीय देवों के लिए यह श्रेष्ठ उक्ति समर्पित हो ॥९,३.२७॥

उदीच्या दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः ॥९,३.२८॥

शाला की उत्तर दिशा की महिमा के निमित्त हमारा वन्दन है, श्रेष्ठ पूजनीय देवों के लिए यह श्रेष्ठ कथन समर्पित हो ॥९,३.२८॥

ध्रुवाया दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः ॥९,३.२९॥

शाला की धुव दिशा की महत्ता के लिए नमन है, श्रेष्ठ वन्दनीय देवों के लिए यह आहुति समर्पित हो ॥९,३.२९॥

ऊर्ध्वाया दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः ॥९,३.३०॥

शाला की ऊर्ध्व दिशा की महिमा के निमित्त हमारा वन्दन है, श्रेष्ठ प्रशंसनीय देवों के लिए यह आहुति समर्पित हो ॥९,३.३०॥

दिशोदिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः ॥९,३.३१॥

शाला की प्रत्येक दिशा और उपदिशा की महिमा के लिए हमारा नमस्कार है, उत्तम वर्णन योग्य देवों के लिए यह श्रेष्ठ उक्ति समर्पित है ॥९,३.३१॥

॥अथर्ववेद – नवम काण्डम्॥

सूक्त ४- ऋषभ सूक्त

शक्तिशाली ऋषभ का वर्णन, जडी बूटियों के रस का परिचय तथा बैल के दान का विषय

साहस्रस्त्वेष ऋषभः पयस्वान् विश्वा रूपाणि वक्षणासु बिभ्रत्।
भद्रं दात्रे यजमानाय शीक्षन् बार्हस्पत्य उस्रियस्तन्तुमातान्॥९,४.१॥

हजारों सामर्थ्यों से युक्त यह तेजस्वी ऋषभ पयस्वान् (दूध या रस उत्पादक) है । यह वहन करने वाली (गौओं या प्रकृति की) इकाइयों में विभिन्न रूपों को धारण करता है । बृहस्पतिदेव से सम्बद्ध यह दिव्य ऋषभ दाता यजमानों को श्रेष्ठ शिक्षण देता हुआ (उत्पादन के ताने-बाने फैलाता है ॥९,४.१॥

अपां यो अग्रे प्रतिमा बभूव प्रभूः सर्वस्मै पृथिवीव देवी ।

पिता वत्सानां पतिरघ्न्यानां साहस्रे पोषे अपि नः कृणोतु ॥९,४.२॥

जो पहले जल (मेघों) की प्रतिमा होता है, जो पृथ्वी के समान ही सबके ऊपर प्रभुत्व स्थापित करने वाला, बछड़ों का पिता और अबध्य(गौओं या प्रकृति) का स्वामी ऋषभ में हजारों प्रकार की पुष्टियों से सम्पन्न करें ॥९,४.२॥

पुमान् अन्तर्वान्त्स्थविरः पयस्वान् वसोः कबन्धमृषभो बिभर्ति ।
तमिन्द्राय पथिभिर्देवयानैर्हुतमग्निर्वहतु जातवेदाः ॥९,४.३॥

अपने अन्दर पौरुष को धारण करने वाला विशाल शरीर वाला पयस्वान् ऋषभ वसुओं (वास प्रदायकों) के उदेर को भर देता है ।उस 'हुत' (दिए हुए ऋषभ को जातवेदा अग्नि, इन्द्र के लिए देवयान मार्गों से ले जाएँ ॥९,४.३॥

पिता वत्सानां पतिरघ्न्यानामथो पिता महतां गर्गराणाम् ।
वत्सो जरायु प्रतिधुक्पीयूष आमिक्षा घृतं तद्वस्य रेतः ॥९,४.४॥

वृषभ, बछड़ों का पिता, अबध्य (गौओं या प्रकृति) गर्गर शब्द करने वाले मेघों या प्रवाहों का पालक है । वत्सरूप में, उसके रक्षक जरायुरूप में, प्रतिदिन दुहे गए अमृतरूप में, दहीं और घीरूप में तथा अप्रत्यक्षरूप में उस ऋषभ का उत्पादक तेज ही विद्यमान रहता है ॥९,४.४॥

देवानां भाग उपनाह एषोऽपां रस ओषधीनां घृतस्य ।
सोमस्य भक्षमवृणीत शक्रो बृहन्न् अद्रिरभवद्यच्छरीरम् ॥९,४.५॥

यह देवों के समीप स्थित (उपनाह) भाग है। औषधियों, जल और घृत का यह रस हैं, इसी सोमरस को इन्द्रदेव ने ग्रहण किया, इसका शरीर हीं पर्वताकार (मेघ) हुआ है ॥९,४.५॥

सोमेन पूर्णं कलशं बिभर्षि त्वस्ता रुपाणां जनिता पशूनाम्।
शिवास्ते सन्तु प्रजन्व इह या इमा न्यस्मभ्यं स्वधिते यछ या अमूः ॥९,४.६॥

हे ऋषभ ! आप सोमरस से भरे हुए कलश को धारण करते हैं। आप पशुओं के उत्पादक, विविधरूपों (शरीरों) को बनाने वाले हैं। आपकी जो सन्तानें हैं, वह हमारे लिए कल्याणकारी हों । हे स्वधिते (स्वयं सम्पूर्ण विश्व को धारण करने वाले) ! आपके पास जो (उत्पादक शक्तियाँ) हैं, उन्हें हमारे लिए प्रदान करें ॥९,४.६॥

आजं बिभर्ति घृतमस्य रेतः साहस्रः पोषस्तमु यज्ञमाहुः ।
इन्द्रस्य रूपमृषभो वसानः सो अस्मान् देवाः शिव ऐतु दत्तः ॥९,४.७॥

यह बैल घृत को धारण करने वाला रेतस् (उत्पादक तेज) का सेचनकर्ता है। हजारों प्रकार की पुष्टियों के प्रदाता होने से इसे यज्ञ कहा गया। यही ऋषभ इन्द्र के स्वरूप को धारण कर रहा है । हे देवगण ! वह ऋषभ हमारे लिए कल्याणप्रद हो ॥९,४.७॥

इन्द्रस्यौजो वरुणस्य बाहू अश्विनोरंसौ मरुतामियं ककुत्।
बृहस्पतिं संभृतमेतमाहुर्ये धीरासः कवयो यह मनीषिणः ॥९,४.८॥

धीर, मनीषी, कवि, विद्वान् आदि बृहस्पतिदेव को ही इस ऋषभ रूप में अवतरित हुआ बतलाते हैं। इसकी भुजाएँ इन्द्रदेव की, कन्धे अश्विनीदेवों के तथा कोहनी भाग मरुद्गणों के कहे गए हैं ॥९,४.८॥

दैवीर्विशः पयस्वान् आ तनोषि त्वामिन्द्रं त्वां सरस्वन्तमाहुः।
सहस्रं स एकमुखा ददाति यो ब्राह्मण ऋषभमाजुहोति ॥९,४.९॥

हे पयस्वान् ऋषभ ! आप दिव्यगुण सम्पन्न प्रजा को रूप देते हैं। आपको ही इन्द्र और सरस्वान् कहा जाता है । जो ब्राह्मण इस ऋषभ का यजन (दान) करता है, वह एक ही मुख (माध्यम से हजारों का दान करता है ॥९,४.९॥

बृहस्पतिः सविता ते वयो दधौ त्वष्टुर्वायोः पर्यात्मा त आभृतः।
अन्तरिक्षे मनसा त्वा जुहोमि बर्हिष्टे द्यावापृथिवी उभे स्ताम् ॥९,४.१०॥

हे वृषभ ! बृहस्पति और सविता देवों ने आपकी आयु को धारण किया तथा आपकी आत्मा त्वष्टा और वायु से पूर्ण है । मन से आपको अन्तरिक्ष में समर्पित करते हैं । दोनों द्युलोक और भूलोक ही आपके आसनरूप हों ॥९,४.१०॥

य इन्द्र इव देवेषु गोष्वेति विवावदत्।
तस्य ऋषभस्याङ्गानि ब्रह्मा सं स्तौतु भद्रया ॥९,४.११॥

जिस प्रकार इन्द्रदेव, देवों में आगमन करते हैं; उसी प्रकार जो गौओं (वाणियों या इन्द्रियों) के बीच शब्द करते हुए आता है, ऐसे ऋषभ के अंगों की स्तुति ब्रह्मा मंगलमयी वाणी से करें ॥९,४.११॥

पार्श्वे आस्तामनुमत्या भगस्यास्तामनूवृजौ ।
अष्ठीवन्तावब्रवीन् मित्रो ममैतौ केवलाविति ॥९,४.१२॥

उसके पार्श्वभाग अनुमतिदेव के और पसलियों के दोनों भाग भगदेव के हैं। मित्रदेवता का कथन था कि दोनों घुटने केवल हमारे ही हैं ॥९,४.१२॥

भसदासीदादित्यानां श्रोणी आस्तां बृहस्पतेः ।
पुछं वातस्य देवस्य तेन धूनोत्योषधीः ॥९,४.१३॥

इसके कटि प्रदेश आदित्यदेवों के, कूल्हे बृहस्पति के और पूंछ वायुदेव की है । उसी से वह औषधियों को प्रकम्पित करते हैं ॥९,४.१३॥

गुदा आसन्त्सिनीवाल्याः सूर्यायास्त्वचमब्रुवन् ।
उत्थातुरब्रुवन् पद ऋषभं यदकल्पयन् ॥९,४.१४॥

सिनीवाली, सूर्य प्रभा, उत्थाती, इन देवों के लिए क्रमशः गुदा, त्वचा और पैर यह अवयव माने गए हैं। इस प्रकार विद्वान् पुरुषों ने बैल के विषय में कल्पना की है ॥९,४.१४॥

क्रोड आसीज्जामिशंसस्य सोमस्य क्लशो धृतः ।
देवाः संगत्य यत्सर्व ऋषभं व्यकल्पयन् ॥९,४.१५॥

जामिशंस की गोद (उदर भाग) और कलशरूप ककुद भाग को सोमदेव ने धारण किया है। इस प्रकार समस्त देवों ने इस बैल के सम्बन्ध में कल्पना की थी ॥९,४.१५॥

ते कुष्ठिकाः सरमायै कुर्मेभ्यो अदधुः शफान् ।
ऊबध्यमस्य कीतेभ्यः श्ववर्तेभ्यो अधारयन् ॥९,४.१६॥

बैल के कुष्ठिका भाग को सरमा और खुरों को कछुओं के निमित्त निश्चित किया गया, इसके अपक्व अन्न भाग को श्वानों और कीड़ों के लिए रखा गया ॥९,४.१६॥

शृङ्गाभ्यां रक्ष ऋषत्यवर्तिं हन्ति चक्षुषा ।
शृणोति भद्रं कर्णाभ्यां गवां यः पतिरघ्न्यः ॥९,४.१७॥

अहिंसित (गौओं या प्रकृति के स्वामी ऋषभ अपने कानों से कल्याणकारी शब्द सुनते हैं, सींगों से राक्षसी वृत्तियों का संहार करते हैं तथा नेत्रों से अकालरूप दारिद्रय को दूर करते हैं ॥९,४.१७॥

शतयाजं स यजते नैनं दुन्वन्त्यग्नयः ।

जिन्वन्ति विश्वे तं देवा यो ब्राह्मण ऋषभमाजुहोति ॥९,४.१८॥

इस ऋषभ का यजन (समर्पण करने वाले ब्राह्मण शतयाज-यज्ञ के पुण्य को अर्जित करते हैं। समस्त देव उन्हें तृप्ति प्रदान करते हैं और अग्नि की ज्वालाएँ इन्हें सन्तापित नहीं करतीं ॥९,४.१८॥

ब्राह्मणेभ्य ऋषभं दत्त्वा वरीयः कृणुते मनः ।
पुष्टिं सो अघ्न्यानां स्वे गोष्ठेऽव पश्यते ॥९,४.१९॥

सत्पात्र ब्राह्मणों को ऋषभ सौंपकर जो अपने मन की उदार भावना का परिचय देते हैं, वह अपनी गोशाला में गौओं की पुष्टि का शीघ्र दर्शन करते हैं ॥९,४.१९॥

गावः सन्तु प्रजाः सन्त्वथो अस्तु तनूबलम् ।
तत्सर्वमनु मन्यन्तां देवा ऋषभदायिने ॥९,४.२०॥

ऋषभ का दान करने वाले को देवगण अपने निर्देश से गौएँ, सुसन्तति और शारीरिक शक्ति प्रदान करें ॥९,४.२०॥

अयं पिपान इन्द्र इद्रयिं दधातु चेतनीम् ।
अयं धेनुं सुदुघां नित्यवत्सां वशं दुहां विपश्चितं परो दिवः ॥९,४.२१॥

सोमरूपी हवि का पान करते हुए इन्द्रदेव ज्ञानस्वरूप सम्पत्ति को प्रदान करें । इन्द्रदेव स्वर्गलोक से परे ज्ञानयुक्त ऐसी धेनु (धारण क्षमता) लेकर आएँ, जो सुदुधा (श्रेष्ठ दूध वाली) नित्यवत्सा (सदा वत्स के साधक के साथ रहने वाली) तथा वश में रहकर दुही जाने वाली हो ॥९,४.२१॥

पिशङ्गरूपो नभसो वयोधा ऐन्द्रः शुष्मो विश्वरूपो न आगन् ।
आयुरस्मभ्यं दधत्प्रजां च रायश्च पोषैरभि नः सचताम् ॥९,४.२२॥

अन्तरिक्षीय अन्न को धारण करने वाला, भूरे रंग वाला (पिशङ्ग रूप) और अनेक आकृतिरूपों से युक्त देवराज इन्द्र का सामर्थ्य- बल निकट आ रहा है। वह बल आयुष्य, सुसन्तति और वैभव प्रदान करते हुए हमें पोषक तत्वों से सम्पन्न करे ॥९,४.२२॥

उपेहोपपर्चनास्मिन् गोष्ठ उप पृञ्च नः ।
उप ऋषभस्य यद्रेत उपेन्द्र तव वीर्यम् ॥९,४.२३॥

हे ऋषभ (साँड़) ! आप इस गोष्ठ में रहें, हमारे सहायक हों । हे इन्द्रदेव ! आपका वीर्य रस वृषभ के रेतस् (उत्पादक तेज) के रूप में हमारे पास आ जाए ॥९,४.२३॥

एतं वो युवानं प्रति दध्मो अत्र तेन क्रीडन्तीश्चरत वशामनु ।
मा नो हासिष्ट जनुषा सुभागा रायश्च पोषैरभि नः सचध्वम् ॥९,४.२४॥

(हे प्रकृति के घटको या गौओ) ! इस युवा बैल (ऋषभ) को हम आपके निमित्त यहाँ रखते हैं, आप इस गोष्ठ (गोशाला) के इच्छित स्थानों में भ्रमण करें । हे सौभाग्यशालिनि ! आप हमारा परित्याग न करें और वैभव की पुष्टियों से हमें सम्पन्न करें ॥९,४.२४॥

सूक्त ५ – पञ्चौदन-अज सूक्त

अज का वर्णन, अज ही अग्नि है और अज ही ज्योति है, अग्नि की प्रशंसा तथा पंचौदन

आ नयैतमा रभस्व सुकृतां लोकमपि गच्छतु प्रजानन् ।
तीर्त्वा तमांसि बहुधा महान्त्यजो नाकमा क्रमतां तृतीयम् ॥९,५.१॥

इस अज (अजन्मा) को यहाँ लाकर, ऐसे सत्कर्म प्रधान यज्ञ को प्रारम्भ करें, जिससे यह अज पुण्यात्माओं के लोकों को जानता हुआ घने अन्धकारों को नाना प्रकार से पार करते हुए तृतीय स्वर्ग धाम को उपलब्ध करे ॥९,५.१॥

इन्द्राय भागं परि त्वा नयाम्यस्मिन् यज्ञे यजमानाय सूरिम् ।
यह नो द्विषन्त्यनु तान् रभस्वानागसो यजमानस्य वीराः ॥९,५.२॥

हे ज्ञानसम्पन्न अज ! हम आपको इस सत्कर्मरूप यज्ञ में इन्द्रदेव (परमात्मा) के लिए यजमान (साधक) के समीप लेकर आते हैं। जो हमारे प्रति दुर्भावनाएँ रखते हैं, उन्हें पैर से कुचल डालें और यजमाने की वीर सन्ताने पापों से रहित हों ॥९,५.२॥

प्र पदोऽव नेनिग्धि दुश्चरितं यच्चचार शुद्धैः शफैरा क्रमतां प्रजानन् ।
तीर्त्वा तमांसि बहुधा विपश्यन्न् अजो नाकमा क्रमतां तृतीयम् ॥९,५.३॥

हे अज (अजन्मा जीवात्मा) ! पूर्वकाल में आपसे जो दुष्कृत्य बन पड़े हों, उसके लिए आप अपने पैरों को पवित्र करें । तत्पश्चात् पवित्र कदमों से मार्ग को जानते हुए स्वर्गारोहण करें । यह अज अधकारों को लाँघते हुए, विभिन्न लोकों को देखते हुए, तृतीय स्वर्ग धाम (परम उच्च स्थिति) को प्राप्त करे ॥९,५.३॥

अनुछ्य श्यामेन त्वचमेतां विशस्तर्यथापर्वसिना माभि मंस्थाः ।

माभि द्रुहः परुशः कल्पयैनं तृतीयह नाके अधि वि श्रयैनम् ॥९,५.४॥

हे विशस्त: (विशेष शासक) ! इस काले शस्त्र (श्याम) से इसकी त्वचा को आप इस प्रकार से काटें, जिससे जोड़ों को वेदना की अनुभूति न हो। द्वेष भावना से रहित होकर जोड़ों से इसे इस प्रकार समर्थ बनाएँ, जिससे यह परम उच्च स्थान (स्वर्ग धाम) को उपलब्ध करे ॥९,५.४॥

ऋचा कुम्भीमध्यग्नौ श्रयाम्या सिञ्चोदकमव धेह्येनम् । पर्याधत्ताग्निना शमितारः श्तो गछतु सुकृतां यत्र लोकः ॥९,५.५॥

अभिमंत्रित करके कुम्भी पात्र को हम आग पर रखते हैं। जल से अभिषिंचित पात्र को है शमिताओ ! आप इस प्रकार रखें, जिससे आग (साधना) द्वारा परिपक्व होकर वह अज वहाँ जाए, जहाँ सत्कर्मियों (पुण्यात्माओं)के श्रेष्ठ लोक हैं ॥९,५.५॥

उत्क्रामातः परि चेदतप्तस्तप्ताच्चरोरधि नाकं तृतीयम् ।

अग्नेरग्निरधि सं बभूविथ ज्योतिष्मन्तमभि लोकं जयैतम् ॥९,५.६॥

चारों ओर से संतप्त न होते हुए भी आप संतप्त चरु द्वारा तृतीय स्वर्गधाम में जाने के लिए आरोहण करें। अग्नि के संताप से आप उसके समान तेजस्वी हो गए हैं।अत: इस तेजोमय लोक को अपने सत्कर्मों से प्राप्त करें ॥९,५.६॥

अजो अग्निरजमु ज्योतिराहुरजं जीवता ब्रह्मणे देयमाहुः ।
अजस्तमांस्यप हन्ति दूरमस्मिंल्लोके श्रद्दधानेन दत्तः ॥९,५.७॥

अज (अजन्मा) हीं अग्नि और ज्योति है । जीवित देहधारियों के अन्दर जो अज है, उसे ब्राह्मी या देव प्रक्रिया के लिए समर्पित करना चाहिए , ऐसा ज्ञानियों का कथन है । इस लोक में श्रद्धासहित समर्पित किया गया, यह अज दूरस्थ स्वर्गधाम में अन्धकारों को विनष्ट करता है ॥९,५.७॥

पञ्चौदनः पञ्चधा वि क्रमतामाक्रंस्यमानस्त्रीणि ज्योतींषि ।

ईजानानां सुकृतां प्रेहि मध्यं तृतीयह नाके अधि वि श्रयस्व ॥९,५.८॥

सूर्य, चन्द्र और अग्नि इन तीन तेजों को प्राप्त करने वाला, यह अज (जीवात्मा) पाँच प्रकार के भोज्य पदार्थों (पाँच प्राणों या पाँच तन्मात्राओं) से युक्त पाँच कार्यक्षेत्रों (पाँचभूतों या इन्द्रियों) में पराक्रम करे । हे पञ्चौदन !आप याज्ञिक सत्कर्मियों के मध्य पहुँचकर तृतीय स्वर्गधाम को प्राप्त हों ॥९,५.८॥

अजा रोह सुकृतां यत्र लोकः शरभो न चत्तोऽति दुर्गान्येषः । पञ्चौदनो ब्रह्मणे दीयमानः स दातारं तृप्त्या तर्पयाति ॥९,५.९॥

हे अज ! उन्नति करो । हिंसक बाध(घातक वृत्तियों या कणों) की पहुँच से परे पहुँचो । पंचभूतों का आधार, यह अज परब्रह्म के लिए समर्पित होकर, समर्पणदाता को तृप्ति देकर सन्तुष्ट करता है ॥९,५.९॥

अजस्त्रिनाके त्रिदिवे त्रिपृष्ठे नाकस्य पृष्ठे ददिवांसं दधाति ।

पञ्चौदनो ब्रह्मणे दीयमानो विश्वरूपा धेनुः कामदुघास्येका ॥९,५.१०॥

यह अज समर्पणदाता को तीनों प्रकार के सुखों के प्रदाता, तीनों प्रकाशों से युक्त और तीन पृष्ठ (आधारों से युक्त स्वर्गधाम के स्थल पर धारण करता है । हे अज़ ! परब्रह्म के लिए समर्पित पञ्चौदन दाता के तप में आप विश्वरूप कामधेनु के समान होते हैं ॥९,५.१०॥

एतद्वो ज्योतिः पितरस्तृतीयं पञ्चौदनं ब्रह्मणेऽजं ददाति ।
अजस्तमांस्यप हन्ति दूरमस्मिंल्लोके श्रद्दधानेन दत्तः ॥९,५.११॥

हे पितरगण ! वह आपकी तृतीय ज्योति है, जो पञ्चौदनरूप अज को ब्रह्मा (परमात्मा) के लिए समर्पित की जाती है । इस लोक में श्रद्धापूर्वक दिया गया पञ्चौदन अज दूरस्थ लोक के अन्धकार को विनष्ट कर देता है ॥९,५.११॥

ईजानानां सुकृतां लोकमीप्सन् पञ्चौदनं ब्रह्मणेऽजं ददाति ।

स व्याप्तिमभि लोकं जयैतं शिवोऽस्मभ्यं प्रतिगृहीतो अस्तु ॥९,५.१२॥

सुकृत (यज्ञादि) करने वालों को प्राप्त होने वाले लोकों की कामना करने वाले जो लोग, जिस पञ्चौदन अज को (यज्ञद्वारा) ब्राह्मीं अनुशासन के लिए प्राप्त करते हैं। ऐसे में अज ! आप व्यापक बनकर इस लोक को जीत लें । (देवों द्वारा स्वीकृत होकर आप हमारा कल्याण करें ॥९,५.१२॥

अजो ह्यग्नेरजनिष्ट शोकाद्विप्रो विप्रस्य सहसो विपश्चित्।
इष्टं पूर्तमभिपूर्तं वषट्कृतं तद्देवा ऋतुशः कल्पयन्तु ॥९,५.१३॥

ब्रह्मबल (ज्ञानशक्ति) और पराक्रम-बल (क्षात्रशक्ति) के विशेषज्ञ यह अज अग्नि की प्रखर ज्वालाओं से उद्भूत (प्रकट) होते हैं। इनके द्वारा इष्टापूर्त (अभीष्ट पूर्ति) और यज्ञीय कृत्यों को सभी देवशक्तियाँ ऋतुओं के अनुकूल कल्पित करें ॥९,५.१३॥

अमोतं वासो दद्याद्धिरण्यमपि दक्षिणाम् ।

तथा लोकान्त्समाप्रोति यह दिव्या यह च पार्थिवाः ॥९,५.१४॥

ज्ञानपूर्वक तैयार किया गया स्वर्णिम आवास जो उस अज के लिए अर्पित करते हैं, वह दानी द्युलोक और पृथ्वी दोनों में ही ऊँची उपलब्धियों को अर्जित करते हैं ॥९,५.१४॥

एतास्त्वाजोप यन्तु धाराः सोम्या देवीर्घृतपृष्ठा मधुश्चुतः ।
स्तभान् पृथिवीमुत द्यां नाकस्य पृष्ठेऽधि सप्तरश्मौ ॥९,५.१५॥

हे अज ! यह घृत और शहद से युक्त सोम सम्बन्धी दिव्य रस धाराएँ आपके समीप पहुँचे । है अज ! आप सात किरणों वाले सूर्य के ऊपर स्वर्ग के पृष्ठभाग से द्युलोक और पृथ्वी को कम्पायमान करें ॥९,५.१५॥

अजोऽस्यज स्वर्गोऽसि त्वया लोकमङ्गिरसः प्राजानन् ।
तं लोकं पुण्यं प्र ज्ञेषम् ॥९,५.१६॥

हे अज ! आप अजन्मा और स्वर्गरूप हैं, आपके द्वारा अंगिरा वंशजों ने स्वर्गलोक के विषय में जानकारी प्राप्त की थी। उस पुण्यमय लोक को हमने भली प्रकार समझ लिया है ॥९,५.१६॥

यहना सहस्रं वहसि यहनाग्ने सर्ववेदसम् ।
तेनेमं यज्ञं नो वह स्वर्देवेषु गन्तवे ॥९,५.१७॥

हे अग्ने ! जिस सामर्थ्य द्वारा आप सभी प्रकार की सम्पदाओं को देने वाली आहुतियों को हजारों विधियों से देवों तक ले जाते हैं, उसी सामर्थ्य से आप हमारे इस यज्ञ को स्वर्ग प्राप्ति के लिए, देवों के पास पहुँचाएँ ॥९,५.१७॥

अजः पक्वः स्वर्गे लोके दधाति पञ्चौदनो निर्ऋतिं बाधमानः ।
तेन लोकान्त्सूर्यवतो जयहम ॥९,५.१८॥

पञ्चौदन अज परिपक्व होकर स्वर्गलोक में स्थापित होते हैं और पापदेवता को दूर हटाते हैं । इस अज द्वारा सूर्य से युक्त लोकों को हम प्राप्त करें ॥९,५.१८॥

यं ब्राह्मणे निदधे यं च विक्षु या विप्रुष ओदनानामजस्य ।
सर्वं तदग्ने सुकृतस्य लोके जानीतान् नः संगमने पथीनाम् ॥९,५.१९॥

हम जिसे ब्रह्मनिष्ठों और जनसाधारण में प्रतिष्ठित करते हैं, वहीं सम्पदा अज के भौगों की पूर्ति करती है। हे अग्निदेव ! यह सभी सम्पदाएँ पुण्यात्माओं के लोक में पहुँचाने वाले मार्गों में हमारी सहायक हों, ऐसा जाने ॥९,५.१९॥

अजो वा इदमग्ने व्यक्रमत तस्योर इयमभवद्द्यौः पृष्टिहम् ।
अन्तरिक्षं मध्यं दिशः पार्श्वे समुद्रौ कुक्षी ॥९,५.२०॥

इस जगत् में जो पूर्वकाल से सतत प्रयत्नरत है, वह अज ही हैं । इस अज की छाती यह भूमि, पीठ-द्युलोक, मध्यभाग-अन्तरिक्षलोक, पसलियाँ-दिशाएँ और कोख समुद्र हैं ॥९,५.२०॥

सत्यं च र्तं च चक्षुषी विश्वं सत्यं श्रद्धा प्राणो विराट्शिरः ।
एष वा अपरिमितो यज्ञो यदजः पञ्चौदनः ॥९,५.२१॥

उसके नेत्र सत्य और ऋतरूप, सम्पूर्ण विश्व अस्तित्वरूप, श्रद्धा प्राणरूप और विराट् शीर्षरूप हुए हैं। यह पञ्चौदन अज असीमित फल को प्रदान करने वाला है ॥९,५.२१॥

अपरिमितमेव यज्ञमाप्नोत्यपरिमितं लोकमव रुन्द्धे ।
योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥९,५.२२॥

जो मनुष्य दक्षिणा की तेजस्विता वाले (भाव से) पञ्चौदन अज को समर्पित करते हैं । वह असंख्य यज्ञफलों के पुण्य के अधिकारी होते हैं और अपरिमित ऐश्वर्यमय लोक के मार्ग को अपने लिए उद्घाटित करते हैं ॥९,५.२२॥

नास्यास्थीनि भिन्द्यान् न मज्ज्ञो निर्धयहत्।
सर्वमेनं समादायहदमिदं प्र वेशयहत्॥९,५.२३॥

इस यज्ञ के निमित्त इसकी अस्थियों को न तोड़े और मज्जाओं को भी न निचोड़े, वरन् सभी 'यह हैं, यह है, ऐसा कहते हुए इसे विशाल में प्रविष्ट करें ॥९,५.२३॥

इदमिदमेवास्य रूपं भवति तेनैनं सं गमयति ।

इषं मह ऊर्जमस्मै दुहे योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥९,५.२४॥

यहीं इस यज्ञ का रूप है, इसे (जीवात्मा अथवा यज्ञ) उस (परमात्मा या उच्च लोकों) से संयुक्त करते हैं। जो मनुष्य दक्षिणा से देदीप्यमान पञ्चौदन अज के समर्पणकर्ता हैं, उन्हें यह यज्ञ, अन्न, महानता और सामर्थ्य देता है ॥९,५.२४॥

पञ्च रुक्मा पञ्च नवानि वस्त्रा पञ्चास्मै धेनवः कामदुघा भवन्ति ।
योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥९,५.२५॥

जो दक्षिणा से देदीप्यमान पञ्चौदन अज के समर्पणदाता हैं, उन्हें पाँच सुवर्ण (प्राणी, पाँच नवीन-वस्त्र, पंच कोश और पाँच कामधेनुएँ (इन्द्रियाँ उपलब्ध होती हैं ॥९,५.२५॥

पञ्च रुक्मा ज्योतिरस्मै भवन्ति वर्म वासांसि तन्वे भवन्ति ।
स्वर्गं लोकमश्नुते योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥९,५.२६॥

दक्षिणा से दीप्तिमान् पंचभोजी अज़ को जो समर्पित करते हैं, उन्हें (उन्हें) पंचरुक्मा ज्योति (पाँच प्रकार की आभायुक्त ज्योति) और स्वर्गलोक की प्राप्ति होती है ।इनके शरीर के लिए कवचरूपी वस्त्र प्राप्त होते हैं ॥९,५.२६॥

या पूर्वं पतिं वित्त्वाऽथान्यं विन्दतेऽपरम् ।
पञ्चौदनं च तावजं ददातो न वि योषतः ॥९,५.२७॥

जो स्त्रियाँ (सूक्ष्म इकाइयाँ) पहले पति (पदार्थ) के साथ रहती हैं अथवा जो अन्य पति (पदार्थों) का वरण कर लेती हैं, ऐसी दोनों प्रकार की नारियाँ (इकाइयाँ) पञ्चौदन(अजन्मे तत्त्वों) के रूप में स्वयं को समर्पित करके भी (अपनी विशेषताओं से) वियुक्त नहीं होतीं ॥९,५.२७॥

समानलोको भवति पुनर्भुवापरः पतिः ।
योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥९,५.२८॥

जो व्यक्ति पञ्चौदन अज को दक्षिणा के तेज से युक्त समर्पित करते हैं, ऐसे दूसरे पति भी पुनर्विवाहित स्त्री के साथ समान स्थान वाले होते हैं ॥९,५.२८॥

अनुपूर्ववत्सां धेनुमनड्वाहमुपबर्हणम् ।
वासो हिरण्यं दत्त्वा ते यन्ति दिवमुत्तमाम् ॥९,५.२९॥

क्रम से प्रतिवर्ष वत्स देने वाली (अनुपूर्ववत्सा) धेनु, वृषभ ओढ़नी (उपबर्हण) और सुवर्णयुक्त वस्त्रों के दानदाता श्रेष्ठ स्वर्गलोक को जाते हैं ॥९,५.२९॥

आत्मानं पितरं पुत्रं पौत्रं पितामहम् ।
जायां जनित्रीं मातरं यह प्रियास्तान् उप ह्वयह ॥९,५.३०॥

अपनी आत्मचेतना, पिता, पुत्र, पौत्र, पितामह, सहधर्मिणी, जन्म देने वाली माता और जो हमारे प्रिय इष्ट मित्र हैं, उन सबको हम अपने समीप बुलाएँ ॥९,५.३०॥

यो वै नैदाघं नाम तुं वेद ।
एष वै नैदाघो नाम तुर्यदजः पञ्चौदनः ।

निरेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियं दहति भवत्यात्मना । ॥९,५.३०॥

यह पञ्चौदन अज ही ग्रीष्म ऋतु है, जो इस ग्रीष्म ऋतु के ज्ञाता और दक्षिणा के तेजस् से सम्पन्न पञ्चौदन अज के समर्पणकर्ता हैं, वह अपनी शक्ति से अप्रिय शत्रु (कणों) की श्री- सम्पदा को भस्मीभूत कर देते हैं ॥९,५.३१॥

यो वै कुर्वन्तं नाम र्तुं वेद ।
कुर्वतींकुर्वतीमेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियमा दत्ते ।
एष वै कुर्वन् नाम र्तुर्यदजः पञ्चौदनः । ॥९,५.३१॥

जो कर्म (कुर्वन्त) नामक ऋतु के ज्ञाता हैं, वह अप्रिय शत्रु की प्रयत्नमयी श्री- सम्पदा को हर लेते हैं। पञ्चौदन अज ही निश्चय से कुर्वन्त नामक ऋतु हैं, जो दक्षिणा के तेज से सम्पन्न पञ्चौदन अज के दाता हैं, वह अपने दान के प्रभाव से अप्रिय शत्रु(कणों) के ऐश्वर्य को विनष्ट कर देते हैं ॥९,५.३२॥

यो वै संयन्तं नाम र्तुं वेद ।

संयतींसंयतीमेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियमा दत्ते ।
एष वै संयन् नाम तुर्यदजः पञ्चौदनः । ॥९,५.३२॥

जो संयन्त नामक ऋतु के ज्ञाता हैं, वह अप्रिय शत्रु की संयम द्वारा उपलब्ध सम्पदा को ग्रहण करते हैं । पञ्चौदन अज ही संयन्त नामक तु हैं । जो दक्षिणा से दीप्तिमान् पञ्चौदन अज के दाता हैं, वह अपनी आत्मशक्ति से अप्रिय (दुष्ट शत्रु की श्री- समृद्धि का विनाश कर देते हैं ॥९,५.३३॥

यो वै पिन्वन्तं नाम तुं वेद ।
पिन्वतींपिन्वतीमेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियमा दत्ते ।
एष वै पिन्वन् नाम तुर्यदजः पञ्चौदनः । ॥९,५.३३॥

जो पिन्वन्त (पोषण) नामक ऋतु के ज्ञाता हैं, वह अप्रिय शत्रु की पोषण द्वारा उपलब्ध की गई (पोषिका) श्री सम्पदा का हरण करते हैं। पञ्चौदन अज ही पिन्वन्त(पोषण) नामक ऋतु हैं । जो दक्षिणा द्वारा देदीप्यमान पञ्चौदन अज (पञ्चभोज्य पदार्थों की सेवनकर्ता अजन्मा आत्मा) के समर्पणकर्ता हैं, वह अपने प्रभाव से दुष्ट शत्रु की श्री समृद्धि को विनष्ट कर देते हैं ॥९,५.३४॥

यो वा उद्यन्तं नाम तुं वेद ।

उद्यतीं्ुद्यतीमेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियमा दत्ते ।
एष वा उद्यन्न् नाम तुर्यदजः पञ्चौदनः । ॥९,५.३५॥

जो उद्यन्त (उद्यम) नामक ऋतु के ज्ञाता हैं, वह दुष्ट शत्रु की उद्यम द्वारा प्राप्त की गई लक्ष्मी को ग्रहण करते हैं । पञ्चौदन अज ही उद्यन्त नामक ऋतु हैं । दक्षिणा से दीप्तिमान् पञ्चौदन अज के जो समर्पणकर्ता हैं, वह अपने सुकृत्यों से शत्रु के श्रीवर्चस्व को भस्मीभूत कर डालते हैं ॥९,५.३५॥

यो वा अभिभुवं नाम तुं वेद ।
अभिभवन्तीमभिभवन्तीमेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियमा दत्ते।
एष वा अभिभूर्नाम तुर्यदजः पञ्चौदनः । ॥९,५.३६॥

जो अभिभू (विजय) नामक ऋतु के ज्ञाता हैं, वह दुष्ट शत्रु की परास्त करने वाली लक्ष्मी (शोभा) का हरण कर लेते हैं। पञ्चौदन अज ही अभिभू (विजय) नामक ऋतु हैं । दक्षिणा से दीप्तिमान् पञ्चौदन अज के जो समर्पणकर्ता हैं,

वह दुष्ट शत्रु के श्री- वर्चस्व को पूरी तरह से जला डालते हैं ॥९,५.३६॥

अजं च पचत पञ्च चौदनान् ।
सर्वा दिशः संमनसः सध्रीचीः सान्तर्देशाः प्रति गृह्णन्तु त एतम्
॥९,५.३७॥

अज और पञ्चौदन (उसके पाँच प्रकार के भागों) को परिपक्व बनाएँ । सभी दिशाएँ और अन्तर्दशाएँ एक मन होकर सहमति भाव से इसे स्वीकार करें ॥९,५.३७॥

तास्ते रक्षन्तु तव तुभ्यमेतं ताभ्य आज्यं हविरिदं जुहोमि ॥
॥९,५.३८॥

आपके इस यज्ञ की सभी दिशाएँ सुरक्षा करें, हम उनके निमित्त घृत और हवन सामग्री की आहुति देते हैं॥९,५.३८॥

सूक्त ९ – अतिथि सत्कार सूक्त

अतिथि सत्कार का वर्णन

यो विद्याद्ब्रह्म प्रत्यक्षं परूंषि यस्य संभारा ऋचो यस्यानूक्यम् ॥९,६.१॥

जो विद्यारूप प्रत्यक्ष ब्रह्म को जानते हैं, जिनके अवयव ही यज्ञ-सामग्री तथा कन्धे और मध्यदेश की रीढ़ (सन्धि) ही ऋचाएँ हैं ॥९,६.१॥

सामानि यस्य लोमानि यजुर्हृदयमुच्यते परिस्तरणमिद्धविः ॥९,६.२॥

उसके बाल ही साम, हृदय ही यजुरूप और आच्छादन वस्त्र ही हवि हैं ॥९,६.२॥

यद्वा अतिथिपतिरतिथीन् प्रतिपश्यति देवयजनं प्रेक्षते ॥९,६.३॥

जो गृहस्थ अतिथियों की ओर देखते हैं, मानो वह देवत्व-संवर्द्धक यज्ञ को ही देखते हैं ॥९,६.३॥

यदभिवदति दीक्षामुपैति यदुदकं याचत्यपः प्र णयति ॥९,६.४॥

अतिथि से चर्चा करना यज्ञीय कार्य में दीक्षित होने के समान है, उसके द्वारा जलकी कामना प्रणयनरूप है ॥९,६.४॥

या एव यज्ञ आपः प्रणीयन्ते ता एव ताः ॥९,६.५॥

जिस जल को यज्ञ में ले जाते हैं, यह वहीं जल है अथवा अतिथि के लिए समर्पित जल वही है, जो यज्ञ में प्रयुक्त होता है ॥९,६.५॥

यत्तर्पणमाहरन्ति य एवाग्नीषोमीयः पशुर्बध्यते स एव सः ॥९,६.६॥

जिन पदार्थों को अतिथि के लिए ले जाते हैं, वहीं मानो अग्नि और सोम के लिए पशु को बाँधा जाना है ॥९,६.६॥

यदावसथान् कल्पयन्ति सदोहविर्धानान्येव तत्कल्पयन्ति ॥९,६.७॥

जो अतिथि के लिए आश्रय स्थल का प्रबन्ध किया जाना है, मानो वहीं यज्ञ में 'सद' और हविर्धान का निर्माण करना है ॥९,६.७॥

यदुपस्तृणन्ति बर्हिरेव तत्॥९,६.८॥

(सत्कार में) जो वस्त्र बिछाए जाते हैं, मानो वहीं यज्ञ की कुशाएँ हैं ॥९,६.८॥

यदुपरिशयनमाहरन्ति स्वर्गमेव तेन लोकमव रुन्द्धे ॥९,६.९॥

जो बिछौना लाते हैं, वह मानो स्वर्गलोक के द्वार को ही खोलते हैं ॥९,६.९॥

यत्कशिपूपबर्हणमाहरन्ति परिधय एव ते ॥९,६.१०॥

अतिथि के लिए जो चादर और तकिया लेकर आते हैं, वहीं मानो यज्ञ की सीमा है ॥९,६.१०॥

यदाञ्जनाभ्यञ्जनमाहरन्त्याज्यमेव तत्॥९,६.११॥

जो आँखों के लिए अञ्जन और शरीर की मालिश के लिए तेल लाते हैं, वह मानो यज्ञ घृत ही है ॥९,६.११॥

यत्पुरा परिवेषात्स्वादमाहरन्ति पुरोदाशावेव तौ ॥९,६.१२॥

परोसने से पूर्व जो अतिथि के लिए खाद्य सामग्री लाते हैं, वह मानो पुरोडाश ही हैं ॥९,६.१२॥

यदशनकृतं ह्वयन्ति हविष्कृतमेव तद्ध्वयन्ति ॥९,६.१३॥

भोजन के लिए अतिथि को बुलाना ही मानो हविष्यान्न स्वीकार करने का आह्वान है ॥९,६.१३॥

यह व्रीहयो यवा निरुप्यन्तेऽंशव एव ते ॥९,६.१४॥

जो चावल और जौ देखे जाते हैं, वह मानो सोम ही हैं ॥९,६.१४॥

यान्युलूखलमुसलानि ग्रावाण एव ते ॥९,६.१५॥

जो ओखली-मूसल अतिथि के लिएधान कूटने के काम आते हैं, वह मानों सोमरस निकालने के पत्थर हैं॥९,६.१५॥

शूर्पं पवित्रं तुषा ऋजीषाभिषवणीरापः ॥९,६.१६॥

अतिथि के लिए जो छाज उपयोग में लाया जाता है, वह यज्ञ में प्रयुक्त होने वाले पवित्रा के समान, धान की भूसी सोमरस अभिषवण के बाद अवशिष्ट रहने वाले सोम तन्तुओं के समान तथा भोजन के लिए प्रयुक्त होने वाला जल, यज्ञीय जल के समान है ॥९,६.१६॥

स्रुग्दर्विर्नेक्षणमायवनं द्रोणकलशाः कुम्भ्यो वायव्यानि पात्राणीयमेव कृष्णाजिनम् ॥९,६.१७॥

कलछी (भात निकालने का साधन) सुवा के समान, पकते समय अन्न को हिलाया जाना यज्ञ की ईक्षण क्रिया के समान, पकाने आदि के पात्र द्रोणकलश के समान, अन्य पात्र, वायव्य पात्र तथा स्वागत में बिछायीं गयीं मृग चर्म कृष्णाजिन तुल्य होते हैं ॥९,६.१७॥

यजमानब्राह्मणं वा एतदतिथिपतिः कुरुते यदाहार्याणि प्रेक्षत इदं भूया३ इदा३ इति ॥९,६.१८॥

अतिथि के सत्कार में यह अधिक है या पर्याप्त है, इस प्रकार जो देने योग्य पदार्थों का निरीक्षण करते हैं, यह प्रक्रिया यज्ञ में यजमान द्वारा ब्राह्मण के प्रति किए गए व्यवहार के समान मान्य है ॥९,६.१८॥

यदाह भूय उद्धरेति प्राणमेव तेन वर्षीयांसं कुरुते ॥९,६.१९॥

जो इस प्रकार कहते हैं कि अधिक परोसकर अतिथि को दें, तो इससे वह अपने प्राण को चिरस्थाई बनाते हैं॥९,६.१९॥

उप हरति हवींष्या सादयति ॥९,६.२०॥

जो उनके पास ले जाते हैं, वह मानो हीन पदार्थ ही ले जाते हैं ॥९,६.२०॥

तेषामासन्नानामतिथिरात्मन् जुहोति ॥९,६.२१॥

उन परोसे गए पदार्थों में से कुछ पदार्थों का अतिथि अपने अन्दर हवन ही करते हैं ॥९,६.२१॥

स्रुचा हस्तेन प्राणे यूपे स्रुक्कारेण वषट्कारेण ॥९,६.२२॥

हाथरूपी स्रुवा से, प्राणरूपी यूप से और भोजन ग्रहण करते समय 'स्रुक् – स्रुक्' ऐसे शब्दरूपी वषट्कार से अपने में आहुति ही डालते हैं ॥९,६.२२॥

एते वै प्रियाश्चाप्रियाश्च र्त्विजः स्वर्गं लोकं गमयन्ति यदतिथयः ॥९,६.२३॥

जो यह अतिथि प्रिय अथवा अप्रिय हैं, वह आतिथ्य यज्ञ के ऋत्विज् यजमान को स्वर्गलोक ले जाते हैं ॥९,६.२३॥

स य एवं विद्वान् न द्विषन्न् अश्नीयान् न द्विषतोऽन्नमश्नीयान् न मीमांसितस्य न मीमांसमानस्य ॥९,६.२४॥

जो इस विषय के ज्ञाता हैं, वह अतिथि किसी के प्रति द्वेष रखते हुए भोजन न करें, द्वेष करने वाले का भोजन न करें, सन्देहास्पद आचरण करने वाले का भोजन न करें और न सन्देह रखने वाले के यहाँ का अन्न ग्रहण करें ॥९,६.२४॥

सर्वो वा एष जग्धपाप्मा यस्यान्नमश्नन्ति ॥९,६.२५॥

जिसके यहाँ अतिथि लोग अन्न ग्रहण करते हैं, उनके सभी कषाय-कल्मषरूपी पाप नष्ट हो जाते हैं ॥९,६.२५॥

सर्वो वा एसोऽजग्धपाप्मा यस्यान्नं नाश्नन्ति ॥९,६.२६॥

जिनके यहाँ अतिथिजन भोजन नहीं करते, उनके सभी पाप वैसे के वैसे ही रहते हैं ॥९,६.२६॥

सर्वदा वा एष युक्तग्रावार्द्रपवित्रो वितताध्वर आहृतयज्ञक्रतुर्य उपहरति ॥९,६.२७॥

जो गृहस्थ अतिथिसेवा में आवश्यक सामग्री उनके पास ले जाते हैं, वह सर्वदा सोमरस निकालने के पत्थरों से युक्त रस की आर्द्रता से पवित्र सोमयज्ञ को करने वाले और उसको पूर्णता प्रदान करने वाले के समान होते हैं ॥९,६.२७॥

प्राजापत्यो वा एतस्य यज्ञो विततो य उपहरति ॥९,६.२८॥

जो अतिथि के प्रति समर्पण करते हैं, वह मानो उनके प्राजापत्य यज्ञ के विस्तारक होते हैं ॥९,६.२८॥

प्रजापतेर्वा एष विक्रमान् अनुविक्रमते य उपहरति ॥९,६.२९॥

जो अतिथिसत्कार करते हैं, वह प्रजापति के पदचिह्नों का अनुगमन करते हैं ॥९,६.२९॥

योऽतिथीनां स आहवनीयो यो वेश्मनि स गार्हपत्यो यस्मिन् पचन्ति स दक्षिणाग्निः ॥९,६.३०॥

अतिथियों का आवाहन ही आहवनीय-अग्नि और घर में स्थित अग्नि ही गार्हपत्यअग्नि है और अन्न पकाने की अग्नि ही दक्षिणाग्नि है ॥९,६.३०॥

इष्टं च वा एष पूर्तं च गृहाणामश्नाति यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति ॥९,६.३१॥

जो अतिथि से पहले भोजन करते हैं, वह गृहस्थ के सभी इष्टकर्मों और पूर्तफलों को ही भक्षण करते हैं ॥९,६.३१॥

पयश्च वा एष रसं च गृहाणामश्नाति यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति ॥९,६.३२॥

जो अतिथि से पहले भोजन करते हैं, वह घर के दूध और रस को ही विनष्ट करते हैं ॥९,६.३२॥

ऊर्जां च वा एष स्फातिं च गृहाणामश्नाति यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति ॥९,६.३३॥

गृहस्थ घर की समृद्धि और अन्न-बल को विनष्ट कर डालते हैं, जो अतिथि से पूर्व भोजन ग्रहण करते हैं ॥९,६.३३॥

प्रजां वा एष पशूंश्च गृहाणामश्नाति यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति ॥९,६.३४॥

वह गृहस्थ घर के कुटुम्बियों और गौ आदि पशुओं को ही विनष्ट कर डालते हैं, जो अतिथि से पहले भोजन ग्रहण करते हैं ॥३४॥

कीर्तिं वा एष यशश्च गृहाणामश्नाति यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति ॥९,६.३५॥

वह गृहस्थ जो अतिथि से पूर्व भोजन लेते हैं, वह घर की कीर्ति और यशस्विता का ही नाश करते हैं ॥९,६.३५॥

श्रियं वा एष संविदं च गृहाणामश्नाति यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति ॥९,६.३६॥

ज़ो अतिथि से पूर्व भोजन करने वाले गृहस्थ हैं, वह घर की श्री और सहमति भावना को ही विनष्ट करते हैं ॥९,६.३६॥

एष वा अतिथिर्यच्छ्रोत्रियस्तस्मात्पूर्वो नाश्नीयात्॥९,६.३७॥

वह निश्चितरूप से अतिथि हैं, जो श्रोत्रिय हैं, अतएव उनसे पहले भोजन करना उचित नहीं ॥९,६.३७॥

अशितावत्यतिथावश्नीयाद्यज्ञस्य सात्मत्वाय यज्ञस्याविच्छेदाय तद्व्रतम् ॥९,६.३८॥

अतिथि द्वारा भोजन ग्रहण करने के बाद गृहस्थ स्वयं भोजन करें। यज्ञ की पूर्णता और निर्विघ्न-समाप्ति के लिए गृहस्थियों द्वारा ऐसे व्रतों के निर्वाह आवश्यक हैं ॥९,६.३८॥

एतद्वा उ स्वादीयो यदधिगवं क्षीरं वा मांसं वा तदेव नाश्नीयात्॥९,६.३९॥

गाय के दूध से उपलब्ध होने वाले और अन्य मासादि, उन्हें भी अतिथि के भोजन से पूर्व गृहस्थ न खाएँ ॥९,६.३९॥

स य एवं विद्वान् क्षीरमुपसिच्योपहरति ।
यावदग्निष्टोमेनेष्ट्वा सुसमृद्धेनावरुन्द्धे तावदेनेनाव रुन्द्धे ॥९,६.४०॥

जो इस बात को जानते हुए अतिथि के लिए दूध अच्छे पात्र में रखकर लाते हैं, वह श्रेष्ठ समृद्ध अग्निष्टोम यज्ञ के यजन का जितना फल प्राप्त करते हैं, उतना आतिथ्य सत्कार से उन्हें प्राप्त होता है ॥९,६.४०॥

स य एवं विद्वान्त्सर्पिरुपसिच्योपहरति ।

यावदतिरात्रेणेष्ट्वा सुसमृद्धेनावरुन्द्धे तावदेनेनाव रुन्द्धे ॥९,६.४१॥

जो इस सम्बन्ध में जानते हुए अतिथि के लिए घृत, बर्तन में ले जाते हैं, उन्हें आतिथ्य-सत्कार से उतना फल मिलता है, जितना किसी को श्रेष्ठ-समृद्ध अतिरावयज्ञ करने से प्राप्त होता है॥९,६.४१॥

स य एवं विद्वान् मधूपसिच्योपहरति ।
यावद्सत्त्रसद्येनेष्ट्वा सुसमृद्धेनावरुन्द्धे तावदेनेनाव रुन्द्धे ॥९,६.४२॥

जो इस विषय को जानते हुए अतिथि के निमित्त शहद उत्तम पात्र में लेकर जाते हैं, उन्हें आतिथ्य-सेवा से उतना प्रतिफल मिलता है, जितना किसी को श्रेष्ठ-समृद्ध 'सत्रसद्य' यज्ञ करने से प्राप्त होता है ॥९,६.४२॥

स य एवं विद्वान् मांसमुपसिच्योपहरति ।
यावद्द्वादशाहेनेष्ट्वा सुसमृद्धेनावरुन्द्धे तावदेनेनाव रुन्द्धे ॥९,६.४३॥

जो इस विषय को जानते हुए (यदि वह मांसाहारी है तो) अतिथि के समीप मांस के पात्र को ले जाते हैं, उन्हें उतना प्रतिफल इस आतिथ्य से मिलता है, जितना श्रेष्ठ-समृद्ध द्वादशाह यज्ञ करने से किसी को प्राप्त होता है ॥९,६.४३॥

स य एवं विद्वान् उदकमुपसिच्योपहरति ।
प्रजानां प्रजननाय गछति प्रतिष्ठां प्रियः प्रजानां भवति य एवं विद्वान् उपसिच्योपहरति ॥९,६.४४॥

जो इस बात को जानते हुए अतिथि के लिए जल को पात्र में रखकर ले जाते हैं, वह प्रजाओं के प्रजनन अर्थात् उत्पत्ति के लिए स्थायित्व प्राप्त करते हैं और प्रजाजनों के प्रिय होते हैं ॥९,६.४४॥

तस्मा उषा हिङ्कृणोति सविता प्र स्तौति ।
बृहस्पतिरूर्जयोद्गायति त्वष्टा पुष्ट्या प्रति हरति विश्वे देवा निधनम्
निधनं भूत्याः प्रजायाः पशूनां भवति य एवं वेद ॥९,६.४५॥

जो इस आतिथ्य- सत्कार को जानते हैं, उन मनुष्यों के लिए उषा आनन्द-सन्देश देती है और सवितादेव उनकी प्रशंसा करते हैं। बृहस्पतिदेव अ-रस से उत्पन्न बल से उनका गान करते हैं, त्वष्टादेव पुष्टि प्रदान करते हैं तथा अन्य सभी देव सोम परिसमाप्ति के वाक्य द्वारा उनकी स्तुति करते है। ऐसा जो जानते हैं, वह सम्पत्ति, प्रजा और पशुओं का आश्रयस्थल होते हैं ॥९,६.४५॥

तस्मा उद्यन्त्सूर्यो हिङ्कृणोति संगवः प्र स्तौति ।
मध्यन्दिन उद्गायत्यपराह्णः प्रति हरत्यस्तंयन् निधनम् ।
निधनं भूत्याः प्रजायाः पशूनां भवति य एवं वेद ॥९,६.४६॥

उदय होते हुए सूर्यदेव उनके लिए आनन्द-सन्देश देते हैं औररश्मियों से युक्त सूर्य उनकी प्रशंसा करते हैं। सूर्यदेव उसकी मृत्यु को विनष्ट करते हुए मध्याह्न के समय उसका गान करते हैं और अपराह्न के समय पुष्टि प्रदान करते हैं। जो इस प्रकार से ज्ञाता हैं, वह सम्पत्ति, प्रजा और पशुओं को उपलब्ध करने वाले होते हैं ॥९,६.४६॥

तस्मा अभ्रो भवन् हिङ्कृणोति स्तनयन् प्र स्तौति ।

विद्योतमानः प्रति हरति वर्षन्न् उद्गायत्युद्गृह्णन् निधनम् ।
निधनं भूत्याः प्रजायाः पशूनां भवति य एवं वेद ॥९,६.४७॥

जो आतिथ्य सत्कार के व्रत के ज्ञाता हैं, उनके लिए उत्पन्न होने वाले मेघ, आनन्द-सन्देश देते हैं और गर्जन करते हुए स्तुतिगान करते हैं ॥ प्रकाशमान मेघ पुष्टि देते हैं, बरसते हुए गुणगान करते हैं तथा उद्ग्रहण करते हुए पालन करते हैं, इस प्रकारसम्पत्ति, राजा और पशुओं के आश्रयदाता होते हैं ॥९,६.४७॥

अतिथीन् प्रति पश्यति हिङ्कृणोत्यभि वदति प्र स्तौत्युदकं याचत्युद्गायति ।
उप हरति प्रति हरत्युच्छिष्टं निधनम् ।
निधनं भूत्याः प्रजायाः पशूनां भवति य एवं वेद ॥९,६.४८॥

आतिथ्य-सत्कार के ज्ञाता, अतिथि दर्शन करते हुए अभिवादन, स्तुति और आनन्द प्रकट करते हैं। जब वह जल माँगते हैं, तो मानों गान करते हैं ॥ जब पदार्थ अतिथि के पास लाते हैं, तो यज्ञ के प्रतिहर्ता का कार्य कस्ते हैं। जो अतिथि के भोजन के पश्चात् अवशिष्ट रहता है, उसे यज्ञीय

प्रसाद मानें ॥ जो इस तथ्य के ज्ञाता हैं, वह सम्पत्ति, प्रजा और पशुओं के पालनकर्ता होते हैं ॥९,६.४८॥

यत्क्षत्तारं ह्वयत्या श्रावयत्येव तत्॥९,६.४९॥

जो अभीष्ट कार्य को करने वाले द्वारपाल को बुलाते हैं, वह वेद वचन को कहने के सामान हैं ॥९,६.४९॥

यत्प्रतिशृणोति प्रत्याश्रावयत्येव तत्॥९,६.५०॥

जब वह सुनता है, मानो वह प्रतिश्राव करता है ॥९,६.५०॥

यत्परिवेष्टारः पात्रहस्ताः पूर्वे चापरे च प्रपद्यन्ते चमसाध्वर्यव एव ते ॥९,६.५१॥

जब अतिथि के लिए प्रारम्भ और पश्चात् में परोसने वाले हाथों में पात्र लेकर जाते हैं, मानो वह यज्ञ के चमसे और अध्वर्यु हैं ॥९,६.५१॥

तेषां न कश्चनाहोता ॥९,६.५२॥

इन अतिथियों में यज्ञरहित कोई भी नहीं होते ॥९,६.५२॥

यद्वा अतिथिपतिरतिथीन् परिविष्य गृहान् उपोदैत्यवभृथमेव तदुपावैति ॥९,६.५३॥

जो गृहस्थ अतिथियों को भोजन परोसकर अपने घर लौटते हैं, वह मानो अवभृथ स्नान करके घर लौटते हैं॥९,६.५३॥

यत्सभागयति दक्षिणाः सभागयति यदनुतिष्ठत उदवस्यत्येव तत्॥९,६.५४॥

जो भोज्य पदार्थों को पृथक्-पृथक् कर देते हैं, वह मानो दक्षिणा प्रदान करते हैं। जो उनके लिए अनुकूल होकर उपस्थित रहते हैं, वह मानो उदवसान (यज्ञ का अन्तिम चरण पूरा) करते हैं ॥९,६.५४॥

स उपहूतः पृथिव्यां भक्षयत्युपहूतस्तस्मिन् यत्पृथिव्यां विश्वरूपम् ॥९,६.५५॥

पृथ्वी में जितने प्रकार के विभिन्न रंग-रूप वाले अन्न हैं, उनके द्वारा (लिए) आदरपूर्वक आमन्त्रित किए जाने पर, वह अतिथि भोजन ग्रहण करते हैं ॥९,६.५५॥

स उपहूतोऽन्तरिक्षे भक्षयत्युपहूतस्तस्मिन् यद्दिवि विश्वरूपम् ॥९,६.५६॥

अन्तरिक्ष में जितने प्रकार के अन्न हैं, उनके द्वारा सम्मान किए जाने पर, वह अतिथि भोजन ग्रहण करते हैं ॥९,६.५६॥

स उपहूतो दिवि भक्षयत्युपहूतस्तस्मिन् यद्दिवि विश्वरूपम् ९,६.॥५७॥

स्वर्ग में जितने प्रकार के विभिन्न अन्न हैं, उनके द्वारा सम्मानित होकर अतिथिगण भोजन ग्रहण करते हैं ॥९,६.५७॥

स उपहूतो देवेषु भक्षयत्युपहूतस्तस्मिन् यद्दिवि विश्वरूपम् ॥९,६.५८॥

देवों में जितने प्रकार की विभिन्न गुणों से युक्त जो अनेक शक्तियाँ हैं, उनके द्वारा सादर आमन्त्रित किए जाने पर, वह अतिथिगण भोजन ग्रहण करते हैं ॥९,६.५८॥

स उपहूतो लोकेषु भक्षयत्युपहूतस्तस्मिन् यद्दिवि विश्वरूपम् ९,६. ॥५९॥

सभी लोकों में जितने प्रकार के विभिन्न रंग-रूप वाले पदार्थ हैं, उनके लिए सादर आमन्त्रित किए जाने पर, वह भक्षण करते हैं ॥९,६.५९॥

स उपहूत उपहूतः ॥९,६.६०॥

जो इस भूलोक में सादर आमन्त्रित किए जाते हैं, वह उसी भावना से परलोक में भी आमन्त्रित किए जाते हैं॥९,६.६०॥

आप्नोतीमं लोकमाप्नोत्यमुम् ॥९,६.६१॥

अतिथि को सादर आमन्त्रित करने वाले सद्गृहस्थ इस लोक में सुख-सौभाग्य को प्राप्त करते हुए, परलोक में भी वहीं प्राप्त करते हैं ॥९,६.६१॥

ज्योतिष्मतो लोकान् जयति य एवं वेद ॥९,६.६२॥

जो आतिथ्य सत्कार के व्रतों के ज्ञाता हैं, वह तेजस्वी ज्योतिर्मयों लोकों को प्राप्त करते हैं ॥९,६.६२॥

सूक्त ७ – गौ सूक्त

गौ महिमा का वर्णन

प्रजापतिश्च परमेष्ठी च शृङ्गे इन्द्रः शिरो अग्निर्ललाटं यमः कृकाटम् ॥९,७.१॥

इस विश्वरूप गौ अथवा वृषभ के प्रजापति और परमेष्ठी दो सींग, इन्द्रदेव सिर, अग्नि ललाट और यम गले की घंटी (कृकाट) हैं ॥९,७.१॥

सोमो राजा मस्तिष्को द्यौरुत्तरहनुः पृथिव्यधरहनुः ॥९,७.२॥

राजा सोम मस्तिष्क, द्युलोक ऊपर का जबड़ा और पृथ्वी नीचे के जबड़े के रूप में है ॥९,७.२॥

विद्युज्जिह्वा मरुतो दन्ता रेवतिर्ग्रीवाः कृत्तिका स्कन्धा घर्मो वहः ॥९,७.३॥

विद्युत् जीभ, मरुद्गण दाँत, रेवती गर्दन, कृत्तिका कन्धे और उष्णता देने वाले सूर्य या ग्रीष्म 'ककुद' के समीपस्थ के भाग हैं ॥९,७.३॥

विश्वं वायुः स्वर्गो लोकः कृष्णद्रं विधरणी निवेष्यः ॥९,७.४॥

समस्त संसार वायु अर्थात् प्राणरूप, स्वर्गलोक कृष्णद्र और विधरणी (धारक शक्ति) पृष्ठभाग है ॥९,७.४॥

श्येनः क्रोतोऽन्तरिक्षं पाजस्यं बृहस्पतिः ककुद्बृहतीः कीकसाः ॥९,७.५॥

श्येन उसकी गोद, अन्तरिक्ष उदरभाग, बृहस्पति ककुद् और बृहती कीकस भाग (कोहनी के भाग) हैं ॥९,७.५॥

देवानां पत्नीः पृष्टय उपसदः पर्शवः ॥९,७.६॥

देवशक्तियाँ पीठ के भाग और उपसद् इष्टियाँ पसलियाँ हैं ॥९,७.६॥

मित्रश्च वरुणश्चांसौ त्वष्टा चार्यमा च दोषणी महादेवो बाहू ॥९,७.७॥

मित्र और वरुणदेव दोनों कन्धे, त्वष्टा और अर्यमादेव बाहुभाग (दोनों भुजाओं के ऊपरी भाग) और महादेव भुजाएँ हैं ॥९,७.७॥

इन्द्राणी भसद्वायुः पुछं पवमानो बालाः ॥९,७.८॥

इन्द्रपत्नी (इन्द्रदेव की शक्ति) कटिभाग (गुह्य), वायु पूँछ और पवमान वायु बाल हैं ॥८॥

ब्रह्म च क्षत्रं च श्रोणी बलमूरू ॥९,७.९॥

ब्राह्मण और क्षत्रिय नितम्ब भाग, बल (सामर्थ्य शक्ति) उस विश्वरूप गौ के जंघाभाग हैं ॥९,७.९॥

धाता च सविता चाष्ठीवन्तौ जङ्घा गन्धर्वा अप्सरसः कुष्ठिका अदितिः शफाः ॥९,७.१०॥

धाता (धारकशक्ति) और सर्वप्रेरक सवितादेव, यह दोनों विश्वरूप गौ के टखने(जानु), गंधर्व जंघाएँ, अप्सराएँ, खुरभागः (कुण्डिकाएँ और अदिति (देवमाता) खुर हैं ॥९,७.१०॥

चेतो हृदयं यकृन् मेधा व्रतं पुरीतत्॥९,७.११॥

चेतना उस विश्वरूप गौ का हृदय क्षेत्र, मेधा- बुद्धि कलेजा (यकृत्) और व्रत पुरीतत् (आँतें) हैं ॥९,७.११॥

क्षुत्कुक्षिरिरा वनिष्ठुः पर्वताः प्लाशयः ॥९,७.१२॥

क्षुधा (भूख) के अधिष्ठाता देव उसकी कोख, इरा (अन्न या जल) उसकी बड़ी आँतें और पहाड़ उसकी छोटी आँतें हैं ॥९,७.१२॥

क्रोधो वृक्कौ मन्युराण्डौ प्रजा शेपः ॥९,७.१३॥

क्रोध उसके गुर्दे, स्वस्थ (संतुलित) क्रोध अण्डकोश और प्रजा, प्रजनन अङ्ग के प्रतीक हैं ॥९,७.१३॥

नदी सूत्री वर्षस्य पतय स्तना स्तनयित्नुरूधः ॥९,७.१४॥

नदियाँ जन्म देने वाली सूत्र नाड़ी, वर्षापति मेघ स्तनरूप और गरजने वाले मेघ उसके दूध से भरे थनरूप हैं॥९,७.१४॥

विश्वव्यचास्चर्मौषधयो लोमानि नक्षत्राणि रूपम् ॥९,७.१५॥

सर्वव्यापक आकाश चर्मभाग, औषधियाँ उसके बाल और नक्षत्र उसके विभिन्न रूप हैं ॥९,७.१५॥

देवजना गुदा मनुष्या आन्त्राण्यत्रा उदरम् ९,७.॥१६॥

देवशक्तियाँ गुदीभाग, साधारण मनुष्य आँतें और अन्य भोजन करने वाले प्राणी उदर भाग हैं ॥९,७.१६॥

रक्षांसि लोहितमितरजना ऊबध्यम् ॥९,७.१७॥

असुर उसके रक्त भाग (लोहित) और इतरजन (तिर्यग् योनियाँ) उसका अनपचा अन्न भाग हैं ॥९,७.१७॥

अभ्रं पीबो मज्जा निधनम् ॥९,७.१८॥

मेघ मेद के समान (पुष्टता) और समस्त धन-सम्पदा मज्जाभाग है ॥९,७.१८॥

अग्निरासीन उत्थितोऽश्विना ॥९,७.१९॥

अग्निदेव उसके आसनस्थल और दोनों अश्विनीकुमार खड़े होने के रूप हैं ॥९,७.१९॥

इन्द्रः प्राङ्तिष्ठन् दक्षिणा तिष्ठन् यमः ॥९,७.२०॥

पूर्व दिशा की ओर विराजमान वह इन्द्ररूप और दक्षिण की ओर वह यमरूप हैं ॥९,७.२०॥

प्रत्यङ्तिष्ठन् धातोदङ्तिष्ठन्त्सविता ॥९,७.२१॥

पश्चिम की ओर विराजमान वह धाता और उत्तर की ओर सविता स्वरूप हैं ॥९,७.२१॥

तृणानि प्राप्तः सोमो राजा ॥९,७.२२॥

तृणों को प्राप्त हुए वह विश्वरूप वृषभ राजा सोमरूप हैं ॥९,७.२२॥

मित्र ईक्षमाण आवृत्त आनन्दः ॥२३॥

सभी प्राणियों पर कृपादृष्टि से देखते हुए वह मित्ररूप और परावृत्त होने पर वही आनन्दरूप हैं ॥९,७.२३॥

युज्यमानो वैश्वदेवो युक्तः प्रजापतिर्विमुक्तः सर्वम् ॥९,७.२४॥

जोतने के समय समस्त देवों के समष्टिरूप, जोतने पर प्रजापति और बन्धनमुक्त होने पर सर्वरूप हैं ॥९,७.२४॥

एतद्वै विश्वरूपं सर्वरूपं गोरूपम् ॥९,७.२५॥

यही विश्वरूप परमात्मा के विराट्रूप, यही सर्वरूप और गौ या वृषभ के रूप हैं ॥९,७.२५॥

उपैनं विश्वरूपाः सर्वरूपाः पशवस्तिष्ठन्ति य एवं वेद ॥९,७.२६॥

जो इस प्रकार प्रजापति के विरारूप को वृषभ या गौ के वास्तविक रूप में जान लेते हैं, उन्हें विश्वरूप और सर्वरूप पशु उपलब्ध होते हैं ॥९,७.२६॥

सूक्त ८- यक्ष्मनिवारण सूक्त

सर्वशीर्षामय दूरीकरण तथा सभी रोगों का दूरीकरण

शीर्षक्तिं शीर्षामयं कर्णशूलं विलोहितम् ।
सर्वं शीर्षन्यं ते रोगं बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥९,८.१॥

मस्तकशूल, कर्णशूल और विलोहित (पाण्डुरोग)- इन सभी शीर्ष रोगों को हम आपसे दूर करते हैं ॥९,८.१॥

कर्णाभ्यां ते कङ्कूषेभ्यः कर्णशूलं विसल्पकम् ।
सर्वं शीर्षन्यं ते रोगं बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥९,८.२॥

आपके कानों और कानों के भीतरी भाग से कर्णशूल और सिल्पक (विशेष कष्ट देने वाले रोग को हम दूर करते हैं तथा सभी शीर्ष रोगों को हम आपसे दूर करते हैं ॥९,८.२॥

यस्य हेतोः प्रच्यवते यक्ष्मः कर्णतो आस्यतः ।
सर्वं शीर्षन्यं ते रोगं बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥९,८.३॥

जिसके कारण यक्ष्मारोग कान और मुख से बहता है, उन सभी शीर्ष रोगों को हम आपसे बाहर करते हैं ॥९,८.३॥

यः कृणोति प्रमोतमन्धं कृणोति पूरुषम् ।
सर्वं शीर्षन्यं ते रोगं बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥९,८.४॥

जो रोग मनुष्य को बहरा और अन्धा कर देते हैं, उन सभी शीर्ष रोगों को हम आपसे दूर हटाते हैं ॥९,८.४॥

अङ्गभेदमङ्गज्वरं विश्वाङ्ग्यं विसल्पकम् ।
सर्वं शीर्षन्यं ते रोगं बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥९,८.५॥

अंगभंजक अंगज्वर, अंगपीड़क विश्वांग्य रोग तथा सभी सिर के रोगों को हम आपसे दूर करते हैं ॥९,८.५॥

यस्य भीमः प्रतीकाश उद्वेपयति पूरुषम् ।
तक्मानं विश्वशारदं बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥९,८.६॥

जिसका भयंकर उद्वेग (प्रतीकाश) मनुष्य को कम्पायमान कर देता है, उस शरत्कालीन ज्वर को हम आपसे बाहर करते हैं ॥९,८.६॥

य ऊरू अनुसर्पत्यथो एति गवीनिके ।
यक्ष्मं ते अन्तरङ्गेभ्यो बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥९,८.७॥

जो रोग जंघाओं की ओर बढ़ता है और गवीनिका नाड़ियों में पहुँच जाता हैं, उस यक्ष्मारोग को आपके भीतरी अंगों से हम बाहर निकालते हैं ॥९,८.७॥

यदि कामादपकामाद्धृदयाज्जायते परि ।
हृदो बलासमङ्गेभ्यो बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥९,८.८॥

जो इच्छाकृत कार्यों अथवा बिना कामना से हृदय के समीप उत्पन्न होता है, उस कफ को हृदय और शेष अंगों से हम बाहर निकालते हैं ॥९,८.८॥

हरिमाणं ते अङ्गेभ्योऽप्वामन्तरोदरात्।
यक्ष्मोधामन्तरात्मनो बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥९,८.९॥

हम आपके अंगों से हरिमा (रक्तहीनता) रोग को, पेट के भीतर से जलोदर रोग को और शरीर के भीतर से यक्ष्मारोग को धारण करने वाली स्थिति को बाहर करते हैं ॥९,८.९॥

आसो बलासो भवतु मूत्रं भवत्वामयत्।
यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निरवोचमहं त्वत्॥९,८.१०॥ {२२}

कफ शरीर से बाहर आए, आमदोष मूत्ररूप में बाहर आए । सभी यक्ष्मारोगों के विष को मन्त्र-सामर्थ्य द्वारा हम बाहर निकालते हैं ॥९,८.१०॥

बहिर्बिलं निर्द्रवतु काहाबाहं तवोदरात्।
यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निरवोचमहं त्वत्॥९,८.११॥

'काहाबाह' अर्थात् फड़फड़ाने वाले रोग आपके पेट से द्रवीभूत होकर बाहर जाएँ, सभी यक्ष्मारोगों के विष-विकारों को हम मन्त्र-सामर्थ्य से, आपके शरीर से बाहर करते हैं ॥९,८.११॥

उदरात्ते क्लोम्नो नाभ्या हृदयादधि ।
यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निरवोचमहं त्वत्॥९,८.१२॥

हम आपके पेट, "क्लोम" (फेफड़ों), नाभि और हृदय से सभी रोगों के विषरूप विकारों को शरीर से बाहर निकालते हैं ॥९,८.१२॥

याः सीमानं विरुजन्ति मूर्धानं प्रत्यर्षनीः ।
अहिंसन्तीरनामया निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम् ॥९,८.१३॥

जो सीमाभाग को पीड़ित करते हैं और सिर तक बढ़ते जाते हैं, वह रोग दूर होकर रोगों के लिए कष्टकारक न होते हुए शरीर के रन्धों से द्रवरूप होकर बाहर निकलें ॥९,८.१३॥

या हृदयमुपर्षन्त्यनुतन्वन्ति कीकसाः ।
अहिंसन्तीरनामया निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम् ॥९,८.१४॥

जो हृदय और हँसुली (ग्रीवास्थि) की 'कीकस' नामक हड्डियाँ हृदय क्षेत्र में फैलती हैं, वह सभी वेदनाएँ दोषरहित और कष्टरहित (हिंसारहित) होती हुई शारीरिक रन्ध्रों से द्रवरूप होकर बाहर निकलें ॥९,८.१४॥

याः पार्श्वे उपर्षन्त्यनुनिक्षन्ति पृष्टीः ।
अहिंसन्तीरनामया निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम् ॥९,८.१५॥

जो अस्थियाँ पार्श्व (पसलियों) में जाती और पीठ भाग तक फैलती हैं, वह रोगरहित और मारक न बनती हुई शारीरिक छिद्रों (रन्धों) से द्रवीभूत होकर बाहर निकलें ॥९,८.१५॥

यास्तिरश्चीः उपर्षन्त्यर्षणीर्वक्षणासु ते ।
अहिंसन्तीरनामया निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम् ॥९,८.१६॥

जो अस्थियाँ तिरछी जाती हुई आपकी पसलियों में प्रवेश करती हैं. वह भी रोगरहित और अमारक होकर द्रवीभूत होकर बाहर निकल जाएँ ॥९,८.१६॥

या गुदा अनुसर्पन्त्यान्त्राणि मोहयन्ति च ।
अहिंसन्तीरनामया निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम् ॥९,८.१७॥

गुदा भाग तक फैली हुई जो अस्थियाँ आँतों को अवरुद्ध करती हैं, वह भी बिना कष्ट दिए रोगविहीन होकर शारीरिक छिद्रों से बाहर निकल जाएँ ॥९,८.१७॥

या मज्ज्ञो निर्धयन्ति परूंषि विरुजन्ति च ।
अहिंसन्तीरनामया निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम् ॥९,८.१८॥

वह अस्थियाँ जो मज्जाभाग को रक्तहीन करती हैं और जोड़ों में वेदना पैदा करती हैं, वह बिना कष्ट दिए रोगरहित होकर शारीरिक रन्धों से बाहर निकलें ॥९,८.१८॥

यह अङ्गानि मदयन्ति यक्ष्मासो रोपणास्तव ।
यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निरवोचमहं त्वत्॥९,८.१९॥

यक्ष्मारोग को दूर करने वाली और अंगों पर मांस की वृद्धि करने वाली जो औषधियाँ आपके अंगों को आनन्दित करती हैं, उनसे सभी यक्ष्मारोगों के विष-विकारों को हम आपसे दूर करते हैं ॥९,८.१९॥

विसल्पस्य विद्रधस्य वातीकारस्य वालजेः ।
यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निरवोचमहं त्वत्॥९,८.२०॥

विसल्प (पीड़ा), विद्रध (सूजन), वातीकार (वातरोगों और अलजि इन सभी रोगों के विष को हम आपके शरीर से, मन्त्र प्रयोग से दूर हटाते हैं ॥९,८.२०॥

पादाभ्यां ते जानुभ्यां श्रोणिभ्यां परि भंससः ।
अनूकादर्षणीरुष्णिहाभ्यः शीर्ष्णो रोगमनीनशम् ॥९,८.२१॥

आपके पैरों, घुटनों, कूल्हों, कटि (गुप्तभाग) रीढ़, गर्दन की नाड़ियों और सिर से फैलने वाली आपकी पीड़ाओं को हमारे द्वारा विनष्ट कर दिया गया है ॥९,८.२१॥

सं ते शीर्ष्णः कपालानि हृदयस्य च यो विधुः ।
उद्यन्न् आदित्य रश्मिभिः शीर्ष्णो रोगमनीनशोऽङ्गभेदमशीशमः ॥९,८.२२॥

आपके सिर पर उदय होते सूर्यदेव ने अपनी किरणों से रोग को विनष्ट किया और चन्द्रदेव आपके कपाल भाग तथा हृदय के अंग भेद को शान्त कर देते हैं ॥९,८.२२॥

सूक्त ९-आत्मा सूक्त

सूर्य की स्तुति तथा पाँच अरों वाला पहिया, बारह आकृतियाँ तथा बारह अरों वाला पहिया

अस्य वामस्य पलितस्य होतुस्तस्य भ्राता मध्यमो अस्त्यश्नः।
तृतीयो भ्राता घृतपृष्ठो अस्यात्रापश्यं विश्पतिं सप्तपुत्रम् ॥९,९.१॥

इस सुन्दर एवं जगपालक होता (सूर्यदेव) को हमने सात पुत्रों (सप्तवर्णी किरणों) सहित देखा है। इन (सूर्यदेव के मध्यम (मध्य-अन्तरिक्ष में रहने वाला) भाई सर्वव्यापी वायुदेव हैं। इनके तीसरे भाई तेजस्वी पीठ वाले (अग्निदेव) हैं ॥९,९.१॥

सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रमेको अश्वो वहति सप्तनामा ।
त्रिनाभि चक्रमजरमनर्वं यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्थुः ॥९,९.२॥

एक चक्र (सविता के पोषण चक्र) वाले रथ से यह सातों जुड़े हैं। सात नामों (रंगों) वाला एक (किरणरूपी) अश्व इस चक्र को चलाता है । तीन (द्युलोक, अन्तरिक्ष एवं पृथ्वी) नाभियों (केन्द्रक) अथवा धुरियों वाला यह काल चक्र सतत गतिशील अविनाशी और शिथिलता रहित है। इसी चक्र के अन्दर समस्त लोक विद्यमान हैं ॥९,९.२॥

इमं रथमधि यह सप्त तस्थुः सप्तचक्रं सप्त वहन्त्यश्वाः ।
सप्त स्वसारो अभि सं नवन्त यत्र गवां निहिता सप्त नाम ॥९,९.३॥

इस (सूर्यदेव के पोषण चक्र) से जुड़े यह जो सात (सप्त वर्ण अथवा सातकाल वर्ग- अयन, ऋतु, मास, पक्ष, दिन, रात एवं मुहूर्त्त हैं, यही सात चक्र अथवा सात अश्वों के रूप में इस रथ को चलाते हैं। जहाँ गौ (वाणी) में सात नाम (सात स्वर) छिपे हैं, ऐसी सात बहनें (स्तुतियाँ) इनकी वन्दना करती हैं ॥९,९.३॥

को ददर्श प्रथमं जायमानमस्थन्वन्तं यदनस्था बिभर्ति ।

भूम्या असुरसृगात्मा क स्वित्को विद्वांसमुप गात्प्रष्टुमेतत्॥९,९.४॥

जो अस्थि (शरीर) रहित होते हुए भी अस्थियुक्त(शरीरधारी प्राणियों) का पालन-पोषण करते हैं, उन स्वयं भू को किसने देखा? भूमि में प्राण, रक्त एवं आत्मा कहाँ से आए? इस सम्बन्ध में पूछने (जानने के लिए कौन किसके पास जाता है ? ॥९,९.४॥

इह ब्रवीतु य ईमङ्ग वेदास्य वामस्य निहितं पदं वेः ।
शीर्ष्णः क्षीरं दुह्रते गावो अस्य वव्रिं वसाना उदकं पदाऽपुः ॥९,९.५॥

जो इस सुन्दर और गतिमान् सूर्य के उत्पत्ति स्थान को (उत्पत्ति के रहस्य को जानते हैं, वह इस गुप्त रहस्य का यहाँ आकर स्पष्टीकरण करें कि इस सर्वोत्तम सूर्य की गौएँ (किरणें) पानी का दोहन करती हैं। बरसाती हैं)। वह ही (ग्रीष्मकाल में) तेजस्वी होकर पैरों (निचले भागों) से जल को सोखती हैं ॥९,९.५॥

पाकः पृच्छामि मनसाऽविजानन् देवानामेना निहिता पदानि ।
वत्से बष्कयहऽधि सप्त तन्तून् वि तत्निरे कवय ओतवा उ ॥९,९.६॥

अपरिपक्व बुद्धिवाले हम, देवताओं के इन गुप्त पदों (चरणों) के सम्बन्ध में जानने के लिए मनोयोग पूर्वक पूछते हैं, सुन्दर युवा गोवत्स (बछड़े या सूर्य के लिए यह विज्ञ (देव आदि) सप्त तन्तुओं (किरणों) को कैसे फैलाते हैं ? ॥९,९.६॥

अचिकित्वांश्चिकितुषश्चिदत्र कवीन् पृच्छामि विद्वनो न विद्वान् ।
वि यस्तस्तम्भ षटिमा रजांस्यजस्य रूपे किमपि स्विदेकम् ॥९,९.७॥

जिसके द्वारा इन छहों लोकों को स्थिर किया गया है, वह अजन्मा प्रजापतिरूपी तत्त्व कैसा है ? उसका क्या स्वरूप है ? इस तत्त्वज्ञान से अपरिचित हम तत्त्ववेत्ताओं से निश्चित स्वरूप की जानकारी के लिए यह पूछते हैं ॥९,९.७॥

माता पितरमृत आ बभाजऽधीत्यग्रे मनसा सं हि जग्मे ।
सा बीभत्सुर्गर्भरसा निविद्धा नमस्वन्त इदुपवाकमीयुः ॥९,९.८॥

माता (पृथ्वीं) ने ऋत (यज्ञ अथवी ऋतु के अनुरूप उपलब्धि) के लिए पिता (द्‌युलोक अथवा सूर्य) का सेवन किया। क्रिया के पूर्व मन से उनका सम्पर्क हुआ । माता गर्भ (उर्वरता धारण करने योग्य) रस से निबद्ध हुई, तब (गर्भ के विकास के लिए उनमें नमनपूर्वक (एक दूसरे का आदर करते हुए वचनों का आदान-प्रदान हुआ ॥९,९.८॥

युक्ता मातासिद्‌धुरि दक्षिणाया अतिष्ठद्गर्भो वृजनीष्वन्तः ।
अमीमेद्वत्सो अनु गामपश्यद्विश्वरूप्यं त्रिषु योगनेषु ॥९,९.९॥

समर्थ सूर्यदेव की धारण क्षमता पर माता (पृथ्वी) आधारित हैं ।गर्भ (उर्वरशक्ति प्राणपर्जन्य) गमनशील (वायु अथवा बादलों) के बीच रहता है । बछड़ा (बादल) गौओं (किरणों)

को देखकर शब्द करते हुए अनुमानकरता है, तब तीनों का संयोग विश्व को रूपवान् बनाता हैं ॥९,९.९॥

तिस्रो मतृस्त्रीन् पितृन् बिभ्रदेक उर्ध्वस्तस्थौ नेमव ग्लापयन्त ।
मन्त्रयन्ते दिवो अमुष्य पृष्ठे विश्वविदो वाचमविश्वविन्नाम् ॥९,९.१०॥

यह स्रष्टा प्रजापति अकेले ही (पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्युलोकरूपी) तीन माताओं तथा (अग्नि, वायु और सूर्य रूपी) तीन पिताओं का भरण- पोषण करते हुए सबसे परे स्थित हैं ।इन्हें थकावट नहीं आती । विश्व के रहस्य को जानते हुए भी अखिल विश्व से परे (बाहर) रहने वाले प्रजापति की वाणी (शक्ति) के सम्बन्ध में (सभी देवगण) द्युलोक के पृष्ठ-भाग पर विचार करते हैं ॥९,९.१०॥

पञ्चारे चक्रे परिवर्तमाने यस्मिन्न् आतस्थुर्भुवनानि विश्वा ।
तस्य नाक्षस्तप्यते भूरिभारः सनादेव न छिद्यते सनाभिः ॥९,९.११॥

अयन, मासादि पाँच अरों वाले इस कालचक्र (रथ) में समस्तलोक विद्यमान हैं। इतने लोकों का भार वहन करते हुए भी इस चक्र का अक्ष (धुरा) न गरम होता है और न टूटता है ॥९,९.११॥

पञ्चपादं पितरं द्वादशाकृतिं दिव आहुः परे अर्धे पुरीषिणम्
।
अथेमे अन्य उपरे विचक्षणे सप्तचक्रे षडर आहुरर्पितम्
॥९,९.१२॥

अयन, मास, ऋतु, पक्ष, दिन और रातरूपी पाँच पैरों वाला, मासरूपी बारह आकृतियों से युक्त तथा जल को. बरसाने वाले पितारूप सूर्य दिव्यलोक के आधे हिस्से में रहते हैं, ऐसी मान्यता है । अन्य विद्वानों के मतानुसार यह सूर्य ऋतुरूप छः अरों तथा अयन, मास, ऋतु, पक्ष, दिन, रात एवं मुहूर्तरूपी सात चक्रों वाले रथ पर आरूढ़ हैं ॥९,९.१२॥

द्वादशारं नहि तज्जराय वर्वर्ति चक्रं परि द्यामृतस्य ।

आ पुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्र सप्त शतानि विंशतिश्च तस्थुः ॥९,९.१३॥

ऋत (सूर्य या सृष्टि संचालक यज्ञ) का बारह अरों (राशियों) वाला चक्र द्युलोक में चारों ओर घूमता रहता है ।यहचक्र कभी अवरुद्ध या जीर्ण नहीं होता हे अग्ने संयुक्तरूप से रहने वाले सात सौ बीस पुत्र यहाँ रहते हैं॥९,९.१३॥

सनेमि चक्रमजरं वि ववृत उत्तानायां दश युक्ता वहन्ति ।
सूर्यस्य चक्षू रजसैत्यावृतं यस्मिन्न् आतस्थुर्भुवनानि विश्वा ॥९,९.१४॥

नेमि (धुरा या नियन्त्रण) से युक्त कभी क्षय न होने वाला सृष्टि चक्र सदैव चलता रहता है। अतिव्यापक प्रकृति के उत्पन्न होने पर इसे दस घोड़े (पाँच प्राण एवं पाँच उपप्राण, पाँच प्राण एवं पाँच अग्नियाँ आदि) चलाते हैं। सूर्यरूपी नेत्र का प्रकाश जल से आच्छादित होकर गतिमान होता है, उसमें ही सम्पूर्ण लोक विद्यमान हैं ॥९,९.१४॥

स्त्रियः सतीस्तामु मे पुंसः आहुः पश्यदक्षण्वान्न् वि चेतदन्धः
।
कविर्यः पुत्रः स ईमा चिकेत यस्ता विजानात्स पितुष्पितासत्॥९,९.१५॥

यह (किरणें) स्त्रियाँ हैं, फिर भी पुरुष की तरह (गर्भ धारण कराने में समर्थ) हैं, यह तथ्य (सूक्ष्म) दृष्टि सम्पन्न ही देख सकते हैं। दूरदर्शी पुत्र (साधक-शिष्य) ही इसे अनुभव कर सकता हैं । जो यह जान लेता है, वह पिता का भी पिता (सर्वसृजेता को भी जानने वाला) हो जाता है ॥९,९.१५॥

साकंजानां सप्तथमाहुरेकजं षडिद्यमा ऋषयो देवजा इति ।
तेषामिष्टानि विहितानि धामश स्थात्रे रेजन्ते विकृतानि रूपशः ॥९,९.१६॥

एक साथ जन्मे, जोड़े से रहने वाले छ: और सातवाँ यह सभी एक (काल अथवा परमात्म चेतना) से उत्पन्न हैं। यह देवत्व से उपजे ऋष हैं । वह सभी अपने बदले हुए रूपों में अपने-अपने इष्ट प्रयोजनों में रत, अपने-अपने धामों (क्षेत्रों) में स्थित रहकर गतिशील (सक्रिय हैं ॥९,९.१६॥

अवः परेण पर एना अवरेण पदा वत्सं बिभ्रती गौरुदस्थात्।
सा कद्रीची कं स्विदर्धं परागात्क स्वित्सूते नहि यूथे अस्मिन्
॥९,९.१७॥

गौएँ (पोषक किरणें) द्युलोक से नीचे की ओर तथा इस (पृथ्वी) से ऊपर की ओर (सतत) गतिमान् हैं। यह बछड़े (जीवन तत्त्व) को धारण किए हुए किस लक्ष्य की ओर जाती हैं ? यह किस आधे भाग से परे निकल कर जन्म देती हैं ? यहाँ समूह के मध्य तो नहीं देतीं ॥९,९.१७॥

अवः परेण पितरं यो अस्य वेदावः परेण पर एनावरेण ।
कवीयमानः क इह प्र वोचद्देवं मनः कुतो अधि प्रजातम्
॥९,९.१८॥

जो द्युलोक से नीचे इस (पृथ्वी) के पिता (सूर्यदेव) तथा पृथिवी के ऊपर स्थित अग्निदेव को जानते हैं, वह निश्चित ही विद्वान् हैं। यह दिव्यता से युक्त आचरण वाला मन कहाँ से उत्पन्न हुआ? इस रहस्य की जानकारी देने वाला ज्ञानी कौन है? वह हमें यहाँ आकर बताए ॥९,९.१८॥

यह अर्वाञ्चस्तामु पराच आहुर्ये पराञ्चस्तामु अर्वाच आहुः ।
इन्द्रश्च या चक्रथुः सोम तानि धुरा न युक्ता रजसो वहन्ति
॥९,९.१९॥

(इस गतिशील विश्व में) पास आते हुए को दूर जाता हुआ भी कहा जाता (अनुभव किया जाता है और दूर जाते को पास आता हुआ भी कहा जाता है । हे सोमदेव ! आपने और इन्द्रदेव ने जो चक्र चला रखा है, वह धुरे से जुड़ा रहकर लोकों को वहन करता है ॥९,९.१९॥

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परि षस्वजाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्न् अन्यो अभि चाकशीति
॥९,९.२०॥

साथ रहने वाले मित्रों की तरह दो पक्षी (गतिशील जीवात्मा एवं परमात्मा) एक ही वृक्ष (प्रकृति अथवा शरीर) पर स्थित हैं। उनमें से एक (जीवात्मा) स्वादिष्ट पीपल (विश्व वृक्षों के फल खाता है, दूसरी (परमात्मा) उन्हें न खाता हुआ केवल देखता (द्रष्टारूप) रहता है ॥९,९.२०॥

यस्मिन् वृक्षे मध्वदः सुपर्णा निविशन्ते सुवते चाधि विश्वे ।
तस्य यदाहुः पिप्पलं स्वाद्वग्रे तन् नोन् नशद्यः पितरं न वेद
॥९,९.२१॥

इस (संसाररूपी) वृक्ष पर प्राण रस का पान करने वाली जीवात्माएँ रहती हैं, जो प्रज्ञा वृद्धि में समर्थ हैं, वृक्ष में ऊपर मधुर फल भी लगे हुए हैं, जो पिता (परमात्मा) को नहीं जानते, वह इन मधुर (सत्कर्मरूपी) फलों के आनन्द से वञ्चित रहते हैं ॥९,९.२१॥

यत्रा सुपर्णा अमृतस्य भक्षमनिमेषं विदथाभिस्वरन्ति ।
एना विश्वस्य भुवनस्य गोपाः स मा धीरः पाकमत्रा विवेश
॥९,९.२२॥

इस (प्रकृति-रूपी) वृक्ष पर बैठी हुई संसार में लिप्त मरणधर्मा जीवात्माएँ सुख-दुःखरूपी फलों को भोगतीं हुई अपने शब्दों में परमात्मा की स्तुति करती हैं कि इन लोकों के स्वामी और संरक्षक परमात्मा अज्ञान से युक्त मुझ जीवात्मा में भी विद्यमान हैं ॥९,९.२२॥

सूक्त १० – आत्मा सूक्त

गायत्री का वर्णन, गायत्री यज्ञ की तीन समिधाएं, भमि की पूजा, मित्र और वरुण का रूप तथा तीन ज्योतियां

यद्गायत्रे अधि गायत्रमाहितं त्रैष्टुभं वा त्रैष्टुभान् निरतक्षत ।
यद्वा जगज्जगत्याहितं पदं य इत्तद्विदुस्ते अमृतत्वमानुशुः ॥९,१०.१॥

पृथ्वी पर गायत्री छन्द को, अन्तरिक्ष में त्रिष्टुप् छन्द को तथा आकाश में जगतीं छन्द को स्थापित करने वाले को जो जान लेता है, वह देवत्व (अमरत्व) को प्राप्त कर लेता है ॥९,१०.१॥

गायत्रेण प्रति मिमीते अर्कमर्केण साम त्रैष्टुभेन वाकम् ।
वाकेन वाकं द्विपदा चतुष्पदाक्षरेण मिमते सप्त वाणीः ॥९,१०.२॥

(परमात्मा ने) गायत्री छन्द से प्राण की रचना की, ऋचाओं के समूह से सामवेद को बनाया, त्रिष्टुप् छन्द से यजुर्वाक्यों की रचना की तथा दो पदों एवं चार पदों वाले अक्षरों से सातों छन्दमय वाणियों को प्रादुर्भूत (प्रकट किया ॥९,१०.२॥

जगता सिन्धुं दिव्यस्कभायद्रथंतरे सूर्यं पर्यपश्यत्।
गायत्रस्य समिधस्तिस्र आहुस्ततो मह्ना प्र रिरिचे महित्वा ॥९,१०.३॥

गतिमान् सूर्यदेव द्वारा प्रजापति ने द्युलोक में जल स्थापित किया। वृष्टि के माध्यम से जल, सूर्यदेव और पृथ्वी संयुक्त होते हैं, तब सूर्य और द्युलोक में सन्निहित प्राण, जल वृष्टि के द्वारा इस पृथ्वी पर प्रकट होता है। गायत्री के तीन पाद अग्नि, विद्युत् और सूर्य (पृथ्वी, द्यु और अन्तरिक्ष) हैं। उस प्रजापति की तेजस्विता से ही यह तीनों पाद बलशाली होते हैं, ऐसा कहा गया है ॥९,१०.३॥

उप ह्वयह सुदुघां धेनुमेतां सुहस्तो गोधुगुत दोहदेनाम् ।

श्रेष्ठं सवं सविता साविषन् नोऽभीद्धो घर्मस्तदु षु प्र वोचत्॥९,१०.४॥

दुग्ध (सुख) प्रदान करने वाली गौ(प्रकृति प्रवाहों) का हम आवाहन करते हैं । इस गौ का दुग्ध (श्रेष्ठ प्राण) हमें प्रदान करें । तपस्वी एवं तेजस्वी (जीवन्त साधक) ही इसको ग्रहण कर सकता है; ऐसा कथन है ॥९,१०.४॥

हिङ्कृण्वती वसुपत्नी वसूनां वत्समिछन्ती मनसाभ्यागात्। दुहामश्विभ्यां पयो अघ्न्येयं सा वर्धतां महते सौभगाय ॥९,१०.५॥

कभी भी वध न करने योग्य गौ, मनुष्यों के लिए अन्न, दुग्ध, घृत आदि ऐश्वर्य प्रदान करने की कामना से अपने बछड़े को- मन को प्यार करती हुई, भाती हुई बछड़े के पास आ जाती है । वह गौ मानव समुदाय के महान् सौभाग्य को बढ़ाती हुई, प्रचुर मात्रा में दुग्ध प्रदान करती है ॥९,१०.५॥

गौरमीमेदभि वत्सं मिषन्तं मूर्धानं हिङ्ङकृणोन् मातवा उ ।

सृक्काणं घर्ममभि वावशाना मिमाति मायुं पयते पयोभिः ॥९,१०.६॥

गौ (स्नेह से) आँखें बन्द किए हुए (बछड़े के समीप जाकर इँभाती है। बछड़ेके सिर को चाटने (सहलाने) के लिए वात्सल्यपूर्ण शब्द करती है। उसके मुँह के पास अपने दूध से भरे थनों को ले जाती हुई शब्द करती है । वह दूध पिलाते हुए (प्यार से) शब्द करते हुए बछड़े को संतुष्ट भी करती है ॥९,१०.६॥

अयं स शिङ्क्ते यहन गौरभिवृता मिमाति मयुं ध्वसनावधि श्रिता ।
सा चित्तिभिर्नि हि चकार मर्त्यान् विद्युद्भवन्ती प्रति वव्रिमौहत ॥९,१०.७॥

वत्स गौ के चारों ओर बिना शब्द के अभिव्यक्ति करता है। गौ भाती हुई अपनी (भावभरी) चेष्टाओं से मनुष्यों को लज्जित करती है। उज्ज्वल दूध उत्पन्न कर अपने भावों को प्रकाशित करती है ॥९,१०.७॥

अनच्छयह तुरगातु जीवमेजद्ध्रुवं मध्य आ पस्त्यानाम् ।
जीवो मृतस्य चरति स्वधाभिरमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः ॥९,१०.८॥

श्वसन प्रक्रिया द्वारा अस्तित्व में रहने वाला जीव (चंचल जीव) जब शरीर से चला जाता है, तब यह शरीर घर में निश्चल पड़ा रहता है। मरणशील (मरणधर्मा) शरीरों के साथ रहने वाली आत्मा अविनाशी है, अतएव अविनाशी आत्मा अपनी धारण करने की शक्तियों से सम्पन्न होकर सर्वत्र निर्बाध विचरण करती है ॥९,१०.८॥

विधुं दद्राणं सलिलस्य पृष्ठे युवानं सन्तं पलितो जगार ।
देवस्य पश्य काव्यं महित्वाद्य ममार स ह्यः समान ॥९,१०.९॥

युद्ध में शौर्य प्रदर्शित करके शत्रुसेना को खदेड़ देने वाले बलशाली इन्द्रदेव के प्रभाव से श्वेतकेश (शक्तिहीन) वृद्ध भी स्फूर्तिवान् हो जाता है। हे स्तोताओ ! महान् इन्द्रदेव के पराक्रम का विवेचन करने वाले विचित्र काव्य को देखो, जो

आज (उच्चारण के बाद) समाप्त हो जाने पर भी (भविष्य में नवीन मंत्रों के रूप में) पुनः प्रकट होता है ॥९,१०.९॥

य ईं चकार न सो अस्य वेद य ईं ददर्श हिरुगिन् नु तस्मात्।
स मातुर्योना परिवीतो अन्तर्बहुप्रजा निर्ऋतिरा विवेश ॥९,१०.१०॥

जिसने इसे (जीव को) बनाया, वह भी इसे नहीं जानता; जिसने इसे देखा है, उससे भी यह लुप्त रहता है। यह माँ के प्रजनन अंग में घिरा हुआ स्थित है । यह प्रजाओं की उत्पत्ति करता हुआ स्वयं अस्तित्व खो देता है ॥९,१०.१०॥

अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम् ।
स सध्रीचीः स विषूचीर्वसान आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्तः ॥९,१०.११॥

समीपस्थ तथा दूरस्थ मार्गों में गतिमान् सूर्यदेव निरन्तर गतिशील रहकर भी कभी नहीं गिरते । वह सम्पूर्ण विश्व का संरक्षण करते हैं। चारों ओर फैलने वाली तेजस्विता को

धारण करते हुए समस्त लोकों में विराजमान् सूर्यदेव को हम देखते हैं ॥९,१०.११॥

द्यौर्नः पिता जनिता नाभिरत्र बन्धुर्नो माता पृथिवी महीयम् ।
उत्तानयोश्चम्वोर्योनिरन्तरत्रा पिता
दुहितुर्गर्भमाधात्॥९,१०.१२॥

द्युलोक स्थित (सूर्यदेव) हमारे पिता और बन्धु स्वरूप हैं। वहीं संसार के नाभिरूप भी हैं। यह विशाल पृथिवी हमारी माता है । दो पात्रों (आकाश के दो गोलार्द्धों) के मध्य स्थित सूर्यदेव अपने द्वारा उत्पन्न पृथ्वी में गर्भ (जीवन) स्थापित करते हैं ॥९,१०.१२॥

पृच्छामि त्वा परमन्तं पृथिव्याः पृच्छामि वृष्णो अश्वस्य रेतः ।
पृच्छामि विश्वस्य भुवनस्य नाभिं पृच्छामि वाचः परमं व्योम
॥९,१०.१३॥

इस धरती का अन्तिम छोर कौन सा है ? सभी भुवनों का केन्द्र कहाँ है ? अश्व की शक्ति कहाँ है ? और वाणी का उद्गम कहाँ है ? यह हम आपसे पूछते हैं ॥९,१०.१३॥

इयं वेदिः परो अन्तः पृथिव्या अयं सोमो वृष्णो अश्वस्य रेतः ।
अयं यज्ञो विश्वस्य भुवनस्य नाभिर्ब्रह्मायं वाचः परमं व्योम ॥९,१०.१४॥

(यज्ञ की) यह वेदिका पृथ्वी को अन्तिम छोर है, यह यज्ञ ही संसार- चक्र की धुरी है। यह सोम ही अश्व (बलशाली) की शक्ति (वीर्य) है । यह 'ब्रह्मा' वाणी का उत्पत्ति स्थान है ॥९,१०.१४॥

न वि जानामि यदिवेदमस्मि निण्यः संनद्धो मनसा चरामि ।
यदा मागन् प्रथमजा ऋतस्यादिद्वाचो अश्नुवे भागमस्याः ॥९,१०.१५॥

– मैं नहीं जानता कि मैं कैसा हूँ? मैं मूर्ख की भाँति मन से बँधकर चलता रहता हूँ । जब पहले ही प्रकट हुआ सत्य मेरे पास आया, तभी मुझे यह वाणी प्राप्त हुई ॥९,१०.१५॥

अपाङ्प्राङेति स्वधया गृभीतोऽमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः ।

ता शश्वन्ता विषूचीना वियन्ता न्यन्यं चिक्युर्न नि चिक्युरन्यम्
॥९,१०.१६॥

यह आत्मा अविनाशी होने पर भी मरणधर्मा शरीर के साथ आबद्ध होने से विविध योनियों में जाती है । यह अपनी धारण क्षमता से ही उन शरीरों में आती और शरीरों से पृथक् होती रहती है। यह दोनों शरीर और आत्मा शाश्वत एवं गतिशील होते हुए विपरीत गतियों से युक्त हैं। लोग इनमें से एक (शरीर) को तो जानते हैं, पर दूसरे (आत्मा) को नहीं समझने ॥९,१०.१६॥

सप्तार्धगर्भा भुवनस्य रेतो विष्णोस्तिष्ठन्ति प्रदिशा विधर्मणि
।
ते धीतिभिर्मनसा ते विपश्चितः परिभुवः परि भवन्ति विश्वतः
॥९,१०.१७॥

सम्पूर्ण विश्व का निर्माण अपरा प्रकृति के मन, ऋण और पंचभूत रूपी सात पुत्रों से होता है। यह सभी तत्त्वे सर्वव्यापक प्रजापति के निर्देशानुसार ही कर्तव्य निर्बाह

करते हैं। वह अपनी ज्ञानशीलता, व्यापकता से तथा अपनी संकल्पशक्ति द्वारा सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त हैं ॥९,१०.१७॥

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः ।
यस्तन् न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्ते अमी समासते ॥९,१०.१८॥

ऋचाएँ अविनाशी परमव्योम में भरी हुई हैं । जहाँ सम्पूर्ण देव शक्तियों का वास है । जो इस तथ्य को नहीं जानता (उसके लिए) ऋचा क्या करेगी ? जो इस तथ्य को जानते हैं, वह इस (ऋचा) का सदुपयोग कर लेते हैं ॥९,१०.१८॥

ऋचः पदं मात्रया कल्पयन्तोऽर्धर्चेन चक्लृपुर्विश्वमेजत्।
त्रिपाद्ब्रह्म पुरुरूपं वि तष्ठे तेन जीवन्ति प्रदिशश्चतस्रः ॥९,१०.१९॥

ॐकार के पद को मात्रा द्वारा कल्पित करते हुए उसके अर्धभाग से इस चैतन्यजगत् को समर्थ करते हैं। तीन पादों से युक्त ज्ञान अनेकरूपों में स्थिर रहता है ।उसकी

एकमात्र मात्रा से चारों दिशाएँ जीवन प्राप्त करती हैं॥९,१०.१९॥

सूयवसाद्भगवती हि भूया अधा वयं भगवन्तः स्याम ।
अद्धि तृणमघ्न्ये विश्वदानीं पिब शुद्धमुदकमाचरन्ती ॥९,१०.२०॥

अवध्य गौ माता ! आप श्रेष्ठ पौष्टिक घास (आहारी ग्रहण करती हुई सौभाग्यशालिनी हों। आपके साथ हम सभी सौभाग्यशाली हों । आप शुद्ध घास खाकर और शुद्ध जल पीकर सर्वत्र विचरण करें ॥९,१०.२०॥

गौरिन् मिमाय सलिलानि तक्षती एकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी ।
अष्टापदी नवपदी बभूवुषी सहस्राक्षरा भुवनस्य पङ्क्तिस्तस्याः समुद्रा अधि वि क्षरन्ति ॥९,१०.२१॥

गौ (वाणी) निश्चित ही शब्द करती हुई जल (रसों) को हिलाती (तरंगित करती है। वह गौ (काव्यमयी वाणी) एक, दो, चार, आठ अथवा नौ पदों वाले छन्दों में विभाजित होती

हुई सहस्र अक्षरों से युक्त होती है । उसके रस समुद्र में क्षरित प्रवाहित होते हैं ॥९,१०.२१॥

कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत्पतन्ति ।
तमाववृत्रन्त्सदनादृतस्यादिद्घृतेन पृथिवीं व्यूदुः ॥९,१०.२२॥

श्रेष्ठ गतिमान् सूर्य-किरणें अपने साथ जल को उठाती हुई , सबके आकर्षण के केन्द्र यानरूप सूर्यमण्डल के समीप पहुँचती हैं । वहाँ अन्तरिक्ष के मेघों में स्थित जल को बरसाते हुए पृथ्वी को सिक्त कर देती हैं॥९,१०.२२॥

अपादेति प्रथमा पद्वतीनां कस्तद्वां मित्रावरुणा चिकेत ।
गर्भो भारं भरत्या चिदस्या ऋतं पिपर्ति अनृतं नि पाति ॥९,१०.२३॥

हे मित्र और वरुणदेव !(दिन और रात्रिरूप आप दोनों की सामर्थ्य से) बिना पैर वाली उषा, पैर वाले प्राणियों से पहले पहुँच जाती हैं। (आप दोनों के गर्भ से उत्पन्न होकर शिशु, सूर्य, संसार के पालन-पोषणरूपी दायित्व का निर्वाह करते

हैं। यही सूर्यदेव असत्यरूप अन्धकार को दूर करके सत्यरूप आलोक को फैलाते हैं ॥९,१०.२३॥

विराड्वाग्विराट्पृथिवी विराडन्तरिक्षं विराट्प्रजापतिः ।
विराण्मृत्युः साध्यानामधिराजो बभूव तस्य भूतं भव्यं वशे स मे भूतं भव्यं वशे कृणोतु ॥९,१०.२४॥

विराट् (ब्रह्म) ही वाणी, भू, अन्तरिक्ष, प्रजापति (निर्माता) एवं मृत्युरूप हैं। वह ही सभी साध्यों के अधिकारी शासक हैं। भूत, भविष्य भी उन्हीं के अधीन हैं, वह भूत और भविष्य को हमारे वश में करें ॥९,१०.२४॥

शकमयं धूममारादपश्यं विषूवता पर एनावरेण ।
उक्षाणं पृश्निमपचन्त वीरास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ॥९,१०.२५॥

दूर से हमने धूम्र को देखा । चतुर्दिक् व्याप्त धूम्र के मध्य अग्नि को देखा, जिसमें प्रत्येक उत्तम कार्यों के पूर्व ऋत्विग्गण शक्तिदायी सोमरस को पकाते हैं ॥९,१०.२५॥

त्रयः केशिन ऋतुथा वि चक्षते संवत्सरे वपत एक एषाम् ।
विश्वमन्यो अभिचष्टे शचीभिर्ध्राजिरेकस्य ददृशे न रूपम् ॥९,१०.२६॥

तीन किरणों वाले पदार्थ (सूर्य, अग्नि और वायु) ऋतुओं के अनुसार दिखाई देते हैं। इनमें से एक (सूर्य) संस्कार का वपन करता है । एक (अग्नि) अपनी शक्तियों से विश्व को प्रकाशित करता है । तीसरे (वायु) का रूप प्रत्यक्ष नहीं दिखाई पड़ता है ॥९,१०.२६॥

चत्वारि वाक्परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा यह मनीषिणः ।
गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति ॥९,१०.२७॥

मनीषियों द्वारा यह ज्ञात हुआ है कि वाणी के चार रूप हैं, इनमें से तीन वाणियाँ (परा, पश्यन्ती तथा मध्यमा) प्रकट नहीं होतीं । सभी मनुष्य वाणी के चौथे रूप (वैखरी) को ही बोलते हैं ॥९,१०.२७॥

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् ।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः
॥९,१०.२८॥

एक ही सत् रूप परमेश्वर का विद्वज्जन (विभिन्न गुणों एवं स्वरूपों के आधार पर) विविध प्रकार से वर्णन करते हैं। उसी (परमात्मा) को (ऐश्वर्य सम्पन्न होने पर) इन्द्र, (हितकारी होने से) मित्र, (श्रेष्ट होने से) वरुण तथा (प्रकाशक होने से अग्नि कहा गया है । वह (परमात्मा) भली प्रकार पालनकर्ता होने से सुपर्ण तथा (शक्तिसम्पन्न होने से) गरुत्मान् है ॥९,१०.२८॥

॥इति नवम काण्डम्॥